M.A. Public Administration (Previous)

Semester – I

Paper Code – 20PUB21C1

ADMINISTRATIVE THEORY – I

प्रशासनिक सिद्धांत – I

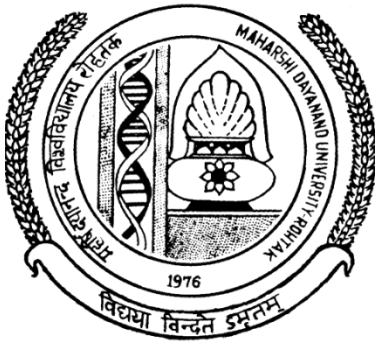

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

विषयसूची

इकाई	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	लोक प्रशासन की अवधारणा : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व	1–30
इकाई–2	संगठन : अर्थ, आधार एवं प्रकार	31–59
इकाई–3	संगठन का संरचना	60–76
इकाई–4	उत्तरदायित्व एवं जवाबदेहता तथा लोक प्रशासन पर नियंत्रण	77–93

इकाई–1

लोक प्रशासन : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्त्व
(Public Administration: Meaning, Nature, Scope and Significance)

'Administration' लेटिन भाषा के दो शब्दों 'एड+मिनिस्टरेयरे' (ad+ministrare) से मिलकर बना है। इन दो शब्दों का सामूहिक अर्थ ''व्यवस्था करना या व्यक्तियों की देखभाल करना या कार्यों को व्यवस्थित ढंग से करना है।'' प्रशासन एक व्यापक प्रक्रिया है जो सभी सामूहिक कार्यों के बारे में, चाहे वे सार्वजनिक हों या व्यक्तिगत, सैनिक हों अथवा असैनिक बड़े हो अथवा छोटे, सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। यह एक सहयोगी कार्य है, क्योंकि मानव सभ्यता की बुनियाद भी सहयोग ही है, अतः प्रशासन या प्रशासनिक तत्त्व सभ्य समाज के उद्‌गम में विद्यमान रहा है। बदली हुई परिस्थितियों में इसके स्वरूप में भले ही अन्तर आया हो, लेकिन इसकी आत्मा आज भी सहयोग पर आधारित है।

प्रशासन की परिभाषाएँ (Definitions of Administration)

प्रशासन को परिभाषित करते हुए ई0इन0 ग्लैडन ने कहा है, ''प्रशासन एक लम्बा तथा अलंकरायुक्त शब्द है, किन्तु इसका अर्थ सीधा सादा है, क्योंकि इसका अर्थ लोगों की देखभाल करना' तथा 'पारस्परिक सम्बन्धों की व्यवस्था करना' है।''

एल0डी0 व्हाइट के अनुसार, ''किसी प्रयोजन या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत से मनुष्यों का निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण ही प्रशासन है।''

लूथर गुलिक के अनुसार, ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किए जाने और निर्धारित उद्देश्यों की परिपूर्ति से है।''

पिफनर एवं प्रेस्थस ने ''वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक संसाधनों के संगठन और संचालन'' को प्रशासन की संज्ञा दी है।

हर्बर्ट ए0 साइमन के शब्दों में, ''व्यापक अर्थ में जो समूह सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सहयोग करते हैं उनके कार्यों को प्रशासन की संज्ञा दी जा सकती है।''

अतः इन सभी परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पदार्थ तथा मानवीय प्रयत्नों का सही संगठन एवं समायोजन ही प्रशासन है।

1. लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Definitions of Public Administration)

यह दो शब्दों 'लोक' और 'प्रशासन' से मिलकर बना है। 'लोक' का अर्थ है सार्वजनिक या सारी जनता या सरकारी कार्यों से सम्बन्धित आदि। अतः सार्वजनिक/सरकारी कार्यों के प्रबन्ध करने वाली मशीनरी, संस्था तथा मानव समूहों को ही लोक प्रशासन कहा जाता है। प्रशासन की तरह, लोक प्रशासन की भी भिन्न–भिन्न लेखकों ने अलग अलग परिभाषाएँ दी हैं जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार है :–

वुडरो विल्सन के अनुसार, ''लोक प्रशासन कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से लागू करने का नाम है। कानून को लागू करने की प्रक्रिया एक प्रशासनिक क्रिया है।''

एल0डी0 व्हाइट के अनुसार, ''लोक प्रशासन में वे सभी क्रियाएं सम्मिलित होती हैं जिनका प्रयोजन लोक नीति के लक्ष्य की पूर्ति करना अथवा उसे लागू करना होता है।''

लूथर गुलिक के अनुसार, ''लोक प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जिसका सरकार से सम्बन्ध है, मुख्यतया इसकी कार्यकारिणी शाखा से। यद्धपि ऐसी समस्याएँ भी होती हैं जिसका सम्बन्ध विधानमण्डलीय तथा न्यायिक शाखाओं से भी होता है।''

वाल्डो के अनुसार, ''राज्य के कार्यों में प्रयुक्त की जाने वाली प्रबन्ध–कला तथा उसके विज्ञान को लोक प्रशासन कहते हैं।''

साइमन के अनुसार, ''सामान्य प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ केन्द्रीय प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकार की कार्यप्रणाली शाखाओं की गतिविधियों का अध्ययन है।''

नीग्रो के अनुसार (अ) लोक प्रशासन सार्वजनिक संस्थाओं में एक सहकारी समूह प्रयत्न है (आ) इसमें सरकार की तीनों शाखाएँ–कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका और उनके अन्तः सम्बन्ध शामिल हैं। (इ) इसकी नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है और इस प्रकार यह राजनैतिक प्रक्रिया का हिस्सा है (ई) यह निजी प्रशासन से भिन्न है। (ओ) यह निकट रूप से विभिन्न निजी समूहों और व्यक्तियों से सम्बद्ध होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि लोक प्रशासन के अर्थ के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो विचारधारायें हैं। पहली विचारधारा के अन्तर्गत लोक प्रशासन के अर्थ को व्यापक रूप में लिया गया है जिसके समर्थक एल0डी0 व्हाइट, वुडरो विलसन, जे0एम0 पिफनर तथा डिमाक आदि लेखक हैं। इस विचारधारा के अनुसार, किसी भी सरकार की सम्पूर्ण गतिविधियाँ चाहे वे वैधानिक, कार्यकारी मामलों से सम्बन्धित हो या न्यायिक मामलों से सम्बन्धित हों, वे सभी लोक प्रशासन का हिस्सा है। दूसरी विचारधारा के अनुसार लोक प्रशासन के अर्थ को संकीर्ण रूप में लिया जाता है इसके समर्थक लूथर, गुलिक, हर्बर्ट साईमन व डब्लू0एफ0 विलोबी आदि हैं जो लोक प्रशासन को सरकार की कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित मानते हैं।

लोक प्रशासन की प्रकृति (Nature of Public Administration)

प्रशासन की प्रकृति के विश्लेषण सम्बन्धी तीन दृष्टिकोण है : (1) प्रबन्धकीय (Managerial), (2) एकीकृत (Integral) तथा (3) कला एवं विज्ञान (Art and Science)।

1. प्रबन्धकीय विचार (Mangerial View)

इस दृष्टिकोण के समर्थक केवल उन्हीं प्रमाणों को प्रशासन मानते हैं जो किसी उद्यम सम्बन्धी कार्यों को पूरा करते हैं। प्रबन्धकीय कार्यों का लक्ष्य उद्यम की सभी क्रियाओं का एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है जिससे सभी क्रियाकलाप एक समन्वित प्रयत्न जैसे दिखाई देते हैं। साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं जिनके अनुसार, ''प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थों में आचरण के उन आदर्शों को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो अनेक प्रकार के सहयोगी समूहों में समान रूप से पाए जाते हैं। ये आदर्श न तो उस लक्ष्य विशेष पर ही आधारित होते हैं जिस की प्राप्ति के लिए वे सहयोग कर रहे हैं, और न ही उन विशेष तकनीकी रीतियों पर ही अवलम्बित हैं जो उन लक्ष्यों हेतु प्रयोग की जाती है।'' इस विचार का पक्ष लेते हुए लूथर गुलिक ने भी लिखा है, ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किए जाने और निर्धारित उद्देश्यों की परिपूर्ति से है।'' दूसरे शब्दों में इस विचार के समर्थक लोक प्रशासन को केवल कार्यपालिका शाखा की गतिविधियों तक ही सीमित कर देते हैं।

2. एकीकृत विचार (Integral View)

इस दृष्टिकोण के समर्थक लोक प्रशासन को लोक नीति को लागू करने और उसकी पूर्ति के लिए प्रयोग की गई गतिविधियों का योग मानते। इस प्रकार निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समन्वित की जाने वाली क्रियाओं का योग ही प्रशासन है, चाहे वे क्रियाएँ, प्रबन्धकीय या तकनीकी हों। विस्तृत रूप से सरकार की सभी गतिविधियाँ जो कार्यपालिका, विधानपालिका या न्यायपालिका से सम्बन्धित, हैं लोक प्रशासन में शामिल हैं। एल0डी0 व्हाइट, विल्सन, डीमाक और पिफनर आदि लेखकों ने इस विचार का समर्थन किया है। एल0डी0 व्हाइट ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, ''लोक प्रशासन का सम्बन्ध उन सभी कार्यों से है जिनका प्रयोजन सार्वजनिक नीति को पूरा करना या उसे क्रियान्वित करना होता है।''

इस सम्बन्ध में पिफनर ने कहा है कि लोक प्रशासन का अर्थ है सरकार का काम करना चाहे वह कार्य स्वास्थ्य प्रयोगशाला में एक्सरे मशीन का संचालन हो अथवा टकसाल में सिक्के बनाना हो। लोक प्रशासन से तात्पर्य है लोगों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करके कार्य को सम्पन्न करना ताकि वे मिलकर कार्य कर सकें अथवा अपने निश्चित उद्देश्यों को पूरा कर सकें।

डिमॉक तथा काईनिंग के अनुसार, ''अध्ययन विषय के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है तो कानून तथा लोकनीति को क्रियान्वित करने हेतु किए जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इसमें वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्थान में अधिकार क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अन्तिम ईंट रखने तक उठाए जाते हैं (और कार्यक्रमों का निर्माण करने वाले अभिकरण का प्रमुख भाग भी इसमें सम्मिलित होता है) तथा व्यवसाय के रूप में प्रशासन किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रियाकलापों का संगठन तथा संचालन करता है।''

उक्त दोनों दृष्टिकोणों में से किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती, विशेषकर आजकल जब सामान्य प्रशासक व विशेषज्ञ के बीच काफी तनातनी चल रही है। विशेषज्ञों का कहना है कि प्रशासन सन्दर्भात्मक है, प्रशासन किसी चीज के सन्दर्भ में ही अर्थपूर्ण है। यह शून्य में नहीं विराजता। इसी विचार को आगे बढ़ाकर वे कहते हैं कि बिना विषय ज्ञान के प्रशासन नहीं चल सकता।

3. कला व विज्ञान दृष्टिकोण (Art and Science View)

लोक प्रशासन विज्ञान है या कला, यह एक बहुत ही विवादास्पद दृष्टिकोण है, इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रशासन का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने हेतु विभिन्न व्यक्तियों से काम करवाना और काम लेना है। इसमें क्रिया पक्ष की प्रधानता है। प्रशासन में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जो दूसरे से काम करवाने का ढंग जानता हो। अतः प्रशासन एक कला है। व्हाइट के शब्दों में, ''लोक प्रशासन असल में विज्ञान है या नहीं? यह बात भविष्य में निर्णय लेने के लिए छोड़ देनी चाहिए ... परन्तु वर्तमान में यह कला अवश्य है।'' एल0 उर्विक प्रशासन को एक कला बताते हैं। उनके मतानुसार, अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन की कला को भी खरीदा नहीं जा सकता। आर्डवे टीड का कहना है कि संक्षेप में प्रशासन एक ललित कला है। एम0पी0 शर्मा के अनुसार, ''प्रशासन अपने आप में निश्चय ही एक ललित कला है जिसमें मूर्ति निर्माण, चित्रांकन, संगीत आदि को शामिल किया जाता है, परन्तु प्रशासन भी इनसे कम नहीं, वरन् कुछ अधिक ही है।

कुछ अन्य विद्वान मानते हैं कि लोक प्रशासन एक विज्ञान है। इस सन्दर्भ में वुडरों विल्सन, जिन्हें लोक प्रशासन का जनक माना जाता है, ने 1887 में ही इसे 'प्रशासन का विज्ञान' कहा था। सन् 1926 में डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी ने कहा था कि ''प्रशासन में कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धान्त होते हैं जो सामान्य व्यवहार में किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान होते है।'' 1937 में लूथर गुलिक और उर्विक ने लोक प्रशासन के विज्ञान होने के दावे को विश्वास के साथ पेश किया, जिसकी पुष्टि उन्होंने 'पेपर्स ऑन दि साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' ग्रन्थ में की। उन्होंने

'लोक प्रशासन' के साथ जुड़े 'लोक' शब्द पर ऐतराज किया और कहा कि ''विज्ञान' विज्ञान है, अतः 'पब्लिक' या 'प्राइवेट' किस्म का कोई विज्ञान नहीं होता। इन प्रश्न पर चार्ल्स ए0 बीयर्ड ने 1937 में वाल्डो द्वारा सम्पादित पुस्तक 'आइडियाज एण्ड इश्यूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में प्रकाशित अपने लेख में सूक्ष्मता से विचार किया। उन्होंने दावा किया है कि ''लोक प्रशासन उसी प्रकार का सामान्य विज्ञान है जैसा कि अर्थशास्त्र या मनोविज्ञान या जीवशास्त्र इतिहास और राजनीति शास्त्र। वस्तुतः यह इनके मुकाबले अधिक विज्ञान है।''

लोक प्रशासन की वैज्ञानिकता पर विचार करते समय कुछ लेखक इसे प्राकृतिक विज्ञान के समान ही मानते हैं जिनमें मरसन, बर्नार्ड तथा बीयर्ड शामिल हैं। दूसरे कुछ लेखक जिनमें वाल्डों और वालास प्रमुख हैं, मानते हैं कि लोक प्रशासन कभी विज्ञान नहीं बन सकता। इस बारे में सारे प्रयास निरर्थक हैं। तीसरे विचार वर्ग में आज के अधिकतर लेखक आते हैं जिनकी मान्यता है कि यह विज्ञान नहीं हैं, लेकिन होकर रहेगा और यह संभव है। उर्विक, टेलर, साइमन, पिफनर आदि लेखकों ने अपनी इस मान्यता के लिए केवल तर्क ही नहीं दिए हैं, अपितु वैज्ञानिक शोधों से लोक प्रशासन को पहले से अधिक वैज्ञानिक बताया है।

लोक प्रशासन का क्षेत्र (Scope of Public Administration)

लोक प्रशासन के क्षेत्र के बारे में विद्वानों के विभिन्न विचार है।

पर्सी मैक्वीन के अनुसार लोक प्रशासन में तीन एम : व्यक्ति, पदार्थ और पद्धतियों (3 M-Men, material and methods) की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

जॉन एम0 पिफनर ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में (i) इसके सिद्धान्त और (ii) केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय सरकारों को शामिल किया है।

वॉकर ने इसके क्षेत्र में (i) प्रशासकीय सिद्धान्त जिसमें प्रशासन तथा इससे सम्बन्धित सभी प्रकार के अधिकारियों के संगठन, कार्यशैली में प्रयोग की जाने वाली अवधारणाएं तथा सिद्धान्त (theories) शामिल है। (ii) व्यावहारिक (applied) लोक प्रशासन जिसमें कुछ विशेष प्रशासकीय व्यवस्थाएँ तथा उनकी समस्याएं शामिल हैं उदाहरणतया अस्पताल प्रशासन, शिक्षा प्रशासन आदि।

किन्तु लोक प्रशासन के क्षेत्र का वर्णन करने के लिए कुछ मुख्य दृष्टिकोणों की सहायता ली जा सकती है जो निम्नलिखित हैं :–

1. संकुचित दुष्टिकोण (Narrow View)
2. व्यापक दृष्टिकोण (Broader View)
3. पोस्टकोर्ब दृष्टिकोण (POSDCORB View)
4. पाठ्य–विषयवस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण (Subject Matter View)
5. लोक नीति सम्बन्धी दृष्टिकोण (Public Policy View)
6. मनोसामाजिक दृष्टिकोण (Psycho-Social View)

1. संकुचित दृष्टिकोण (Narrow View)

इसके अनुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन की केवल कार्यपालिका शाखा से है। साइमन ने कहा है कि लोक प्रशासन से अभिप्राय उन क्रियाओं से है जो केन्द्र, राजय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती हैं। लूथर गुलिक द्वारा प्रस्तुत 'पोस्डकॉर्ब' विचार को भी इसी संकुचित दायरे में रखा जा सकता है।

2. व्यापक दृष्टिकोण (Broader View)

व्यापक दृष्टिकोण के समर्थक यह मानते हैं कि लोक प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों – व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका द्वारा सम्पादित कार्य शामिल हैं। इनके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी क्रियाकलाप सम्मिलित हैं जिनका प्रयोजन लोकनीति को पूरा करना या उसे क्रियान्वित करना होता है। विलोबी, मार्क्स और एल0डी0 व्हाइट इस विचार के समर्थक हैं। मार्क्स के शब्दों में, ''अपने व्यापकतम क्षेत्र में लोक प्रशासन के अन्तर्गत सार्वजनिक नीति से सम्बन्धित समस्त क्रियाएँ आती हैं।

3. पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण (POSDECORB View)

लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में लूथर गुलिक ने जो मत प्रस्तुत किया है उसे पोस्डकोर्ब कहा जाता है। इस शब्द का निर्माण अंग्रेजी भाषा के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाकर किया गया है। 1971 में गुलिक ने इसमें E शब्द को शामिल कर दिया जिसका अर्थ Evoluation (मूल्यांकन)। POSDECORB द्वारा किए गए कार्यों का संपर्क मुख्य कार्यपालिका द्वारा किए गए कार्यों से काफी मिलता जुलता है। इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है :–

(i) **योजना बनाना (Planning)** कार्य को आरम्भ करने से पहले उसकी रूपरेखा तेयार करना। नियोजन से किसी भी कार्य से सम्बन्धित लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों पर रोशनी डाली जाती है और उन तरीकों को भी निश्चित किया जाता है जिसके द्वारा उन कार्यों को पूरा किया जाना है। यही सब कार्य नियोजन के अन्तर्गत आते हैं।

(ii) **संगठन बनाना (Organisation)** संगठन से अभिप्राय ऐसे पदार्थ व मानवीय व्यवस्था से है जिसके द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनको क्रमबद्ध किया जाता है। सरकारी कार्य अधिकतर विभागीय प्रणाली द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। संगठन के द्वारा इन विभागों में समन्वय तथा क्रमबद्धता पर बल दिया जाता है जिससे वांछनीय उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

(iii) **कर्मचारियों की व्यवस्था करना (Staffing)** किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए योग्य कर्मचारियों की जरूरत पड़ती है और उन कर्मचारियों की नियुक्ति करना, प्रशिक्षण देना, कार्य से सम्बन्धित वातावरण तैयार करने पदोन्नति करना आदि सभी लोक प्रशासन के कार्य हैं।

(iv) **निर्देशन करना (Directing)** निर्देशन के द्वारा किसी संगठन की सफलता व असफलता उसमें निहित है। प्रभावशाली निर्देशन के द्वारा कर्मचारी अपने दायित्वों को अच्छी तरह से निभा सकते हैं। निर्देशन मौखिक व लिखित दोनों प्रकार के हो सकते हैं जिनके द्वारा आदेश व सूचनाएँ दी जाती हैं तथा नेतृत्व प्रदान किया जाता है।

(v) **मूल्यांकन (Evaluation)** लोक प्रशासन में मूल्यांकन शब्द 1970 के दशक में लूथर गुलिक द्वारा प्रतिपादित किया गया है, इसका अभिप्राय है कि प्रशासनिक नीतियों के निर्माण व क्रियान्वयन के पश्चात् उनका मूल्यांकन किया जाना अति आवश्यक है। प्रशासन में लक्ष्य प्राप्ति के लिए फीडबैक लेना बहुत जरूरी है जोकि संचालित की गई नीतियों के मूल्यांकन से ही सम्भव है।

(vi) **समन्वय स्थापित करना (Co-ordination)** प्रशासकीय कार्यों के सम्पादन में समन्वय एक आवश्यक तत्त्व है। कार्यों का विभाजन कर उचित कार्य योग्य व्यक्ति को सौंपना और उसमें तालमेल बैठाना या समन्वय करना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। लोक प्रशासन को तब तक सफलता नहीं मिलती जब तक वह विभिन्न कार्यों का परस्पर समन्वय स्थापित न कर ले।

(vii) **रिपोर्ट करना (Reporting)** इसका उद्देश्य वरिष्ठ तथा कनिष्ठ कर्मचारियों के कार्यों के बारे में निरीक्षण अधिकारियों को सूचित करना और निरीक्षण के लिए अभिलेख तैयार करना है।

(viii) **बजट तैयार करना (Budgeting)** किसी भी संगठन व संस्था को चलाने के लिए सबसे पहले वित्त की जरूरत होती है ओर वित्त की उपलब्धि के हिसाब से संस्था अपने कार्य का निर्धारण करती है जिससे कि वे अपने निष्पादन में सफल हो सके। बिना किसी आमदनी व खर्च के हिसाब के लोक प्रशासन शिथिल हो जायेगा। आय व्यय का लेखा तैयार करना, वित्तीय योजनाएँ बनाना, करारोपन, व्यय करना और अंकेक्षण के माध्यम से नियंत्रण करना आदि कार्य इसमें शामिल हैं।

पोस्डकॉर्ब क्रियाएँ लोक प्रशासन के प्रत्येक संगठन में पाई जाती हैं जो हर कदम पर प्रशासन को सफल बनाने में सहायक सिद्ध है। मानव तत्त्व की अपेक्षा के कारण आधुनिक युग में यह दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण व अपूर्ण माना जाता है।

4. पाठ्य–विषय वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण (Subjective Matter View) वाकर द्वारा लोक प्रशासन का पाठ्य वस्तु सम्बन्धी वर्गीकरण हमें लोक प्रशासन के क्षेत्र को समझने में काफी सहायता करता है फिर भी दोहराव से ग्रस्त है। फयोल ने पाठ्य वस्तु सम्बन्धी ज्ञान को छः भागों में बाँटा है जिनमें तकनीकी, व्यवसायिक, सुरक्षा, लेखा, वित्तीय और प्रशासकीय शामिल हैं। किन्तु पाठ्य वस्तु सम्बन्धी यह विभाजन भी अपूर्ण है क्योंकि इसमें कई महत्त्वपूर्ण विषय, जिनका लोक प्रशासन निर्वाह करता है, छोड़ दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, विदेश, सामाजिक सुरक्षा, लोक नीति, इत्यादि से सम्बन्धित मामले हैं। संक्षेप में लोक प्रशासन के अन्तर्गत संगठन, लक्ष्य, नीति, नियोजन, निर्णय, सेवीवर्ग प्रशासन, बजट व वित्त, समन्वय, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण, लोक सम्बन्धी, मानवीय सम्बन्धी गृह नीति, विदेश नीति, सामाजिक सुरक्षा, लोक कलयाणकारी योजनाएं एवं उनका कार्यान्वयन, संचार व्यवस्था आदि शामिल किए जा सकते हैं।

5. लोक नीति सम्बन्धी दृष्टिकोण (Public Policy View) यद्यपि व्हाइट द्वारा दी गई परिभाषा के अन्तर्गत लोक प्रशासन को लोक नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित माना गया है, किन्तु विगत कुछ दशकों से यह कहा जा रहा है कि लोक प्रशासन केवल सरकारी नीतियों के व्यावहारिक क्रियान्वयन के लिए ही उत्तरदायी नहीं है बल्कि नीति के निर्माण में भी इसकी अहम भूमिका है। सामान्यतः यही माना जाता है कि लोक नीति का निर्माण सर्वोच्च राजनीतिक कार्यपालिका तथा विधायिका करती है तथा लोक प्रशासन के अधिकारी एवं संस्थाएँ राजनीतिज्ञों द्वारा निर्मित लोक नीति को लागू करते हैं। किन्तु लोक प्रशासन को नीति विज्ञान मानने वाले यह तर्क देते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में लोक नीति वैसी ही निर्मित होती है जैसा कि प्रारूप प्रशासनिक अधिकारी तैयार करके देते हैं या तथ्य तथा आँकड़ें उपलब्ध करवाकर अपनी भूमिका निभाते हैं। दूसरा तर्क यह दिया गया है कि लोक नीति तो एक स्थूल विचार है जबकि इस नीति का क्रियान्वयन वास्तव में वैसा ही होता है जैसे कि प्रशासन उनका निर्माण करता है। लोक प्रशासन में भी अधिकांश स्तरों पर नीतियाँ तैयार होती हैं। वैसे भी नीति विज्ञान के अनुसार राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन का क्षेत्र मिलता जुलता है इनके मध्य दूरी या विभाजक रेखा खींचना हितकर नहीं है। येहेजकेल ड्रोर तथा मर्सन इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं।

6. मनोसामाजिक दृष्टिकोण (Psycho-Socio View) फ्रेड रिग्ज, फैरेल हैडी एवं स्टॉक्स तथा रॉबर्ट डहाल इत्यादि प्रगतिशील विद्वान यह मानते हैं कि लोक प्रशासन निर्वात (शून्य) में कार्य नहीं करता है बल्कि यह तो सम्पूर्ण मानव समाज का अनिवार्य अंग है, अतः लोक प्रशासन का क्षेत्र केवल कुछ प्रबन्धकीय तकनीकें नहीं बल्कि मानव समाज की सभ्यता, संस्कृति, मूल्य, परिस्थितियों अर्थव्यवस्था तथा मानव व्यवहार इत्यादि भी इसके अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा सिद्धान्त निर्माण को एक दूसरे का पर्याय मानने का कारण यही है कि ऐसा

लोक प्रशासन को एक सैद्धान्तिक विषय के रूप में स्थापित करने के लिए नितांत आवश्यक है। रॉबर्ट डहाल का मानना है, जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनाया जाता, तब तक लोक प्रशासन का विज्ञान मानने का दावा खोखला ही बना रहेगा। इस प्रकार यह दृष्टिकोण, परिस्थितिकीय उपागम का समर्थक है जो न केवल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारकों को लोक प्रशासन के अध्ययनों में सम्मिलित करता है बल्कि अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ अन्तरविषयी दृष्टिकोण पर भी बल प्रदान करता है। वास्तव में, लोक प्रशासन के क्षेत्र में सभी सामाजिक विज्ञानों का क्षेत्र तो सम्मिलित नहीं किया जा सकता है बल्कि लोक प्रशासन के अध्ययनों में कुछ सामाजिक पक्षों को समाहित करना एक सीमा तक अनिवार्य सा है।

इस प्रकार लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक हो गया है क्योंकि अब इसने नीति निर्माण का कार्य भी संभाल लिया है और इसका केन्द्र कानून व्यवस्था के अतिरिक्त सामाजिक सेवाओं पर स्थापित हो गया है।

लोक प्रशासन का महत्त्व (Significance of Public Administration)

लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के बाद तक के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं अर्पित करता है। यह ''आधुनिक सभ्यता हा हृदय है। लोक प्रशासन पुलिस राज्य से निकलकर न सिर्फ कल्याणकारी राज्य और प्रशासकीय राज्य के पड़ाव तक पहुच चुका है अपितु नागरिकों के जीवन को समस्या रहित बनाने के लिए प्रयत्नशील है। इसके महत्व निम्नलिखित हैः–

1. राज्य का व्यवहारिक व विशिष्ट भाग :– शासन अर्थात् सरकार के कार्यों तथा दायित्वों को मूर्त्तरूप प्रदान करने में लोक प्रशासन एक अनिवार्य तथा विशिष्ट आवश्यकता है। क्योंकि आधुनिक युग में 'राज्य' को एक बुराई के रूप में नही बल्कि मानव कल्याण तथा विकास के लिए एक अनिवार्यता रूप में देखा जाता है।
2. जन कल्याण का माध्यमः– वर्तमान समाजों की अधिसंख्य मानवीय आवश्यकताएँ राज्य के अभिकर्त्ता अर्थात् लोक प्रशासन द्वारा पूरी की जाती है। चिकित्सा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, जन संचार, परिवहन, ऊर्जा, सामाजिक सुरक्षा, कृषि उद्योग, कुटीर उद्योग, पशुपालन, सिंचाई, डाक तथा आवास इत्यादि समस्त मूलभूत मानवीय सामाजिक सेवाओं का संचालन प्रशासन के माध्यम से ही संभव है।
3. रक्षा, अखण्डता तथा शांति व्यवस्थाः– कुशल प्रशासन, सरकार का एकमात्र सशक्त सहारा है। इसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत–विक्षत हो जाएगा। न्याय, पुलिस, सशस्त्र बल, हथियार निर्माण, अन्तरिक्ष, परमाणु ऊर्जा, बहुमूल्य खनिज, वैदेशिक–सम्बन्ध तथा गुप्तचर इत्यादि गतिविधियाँ ऐसी हैं जो किसी भी राष्ट्र की बाहरी एवं भीतरी सुरक्षा को स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। ऐसी गतिविधियाँ या विषय जानबूझकर लोक प्रशासन के अधीन रखे जाते हैं।
4. लोकतंत्र का वाहक एवं रक्षक :– आम व्यक्ति तक शासकीय कार्यों की सूचना पहुँचाना, नागरिक तथा मानव अधिकारों की क्रियान्विति करना, निष्पक्ष चुनाव करवाना, जन शिकायतों का निस्तारण करना, राजनीतिक चेतना में वृद्धि करना तथा विकास कार्यों में जन सहभागिता सुनिश्चित कराने के क्रम में लोक प्रशासन की भूमिका सर्वविदित है।
5. सामाजिक परिवर्तन का माध्यम :– आधुनिक समाजों विशेषतः विकासशील समाजों की परम्परागत जीवन शैली, अंधविश्वास, रूढ़ियों तथा कुरीतियों में सुनियोजित परिवर्तन लाना एक सामाजिक आवश्यकता है। सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विकास, संविधान, कानून, मीडिया, दबाव समूह तथा स्वयंसेवी संगठनो सहित प्रशासन भी एक यंत्र माना जाता है।
6. सभ्यता, संस्कृति तथा कला का संरक्षक :– यद्यपि आदिकाल से ही कला एवं संस्कृति को राजाओं का

संरक्षण मिलता रहा है तथापि वर्तमान भौतिक युग में जहाँ सांस्कृतिक परिवर्तन की दर अत्यधिक है, राज्य के दायित्व पूर्व की तुलना में कही अधिक एवं गम्भीर हो गए हैं। सांस्कृतिक अतिक्रमण, आक्रमण तथा पतन की ओर अग्रसर गौरवशाली मूल्यों के संरक्षण में निस्संदेह लोक प्रशासन ही सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है।

7. विकास प्रशासन का पर्याय :– समाजवादी शासन व्यवस्थाओं में सम्पूर्ण विकास प्रशासन के प्रयासों पर निर्भर करता है, वही पूँजीवादी देशों में भी विकास की मूलभूत नीतियाँ, लोक प्रशासन ही तैयार करता है। विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लोक प्रशासन के कार्मिकों तथा विशेषज्ञों द्वारा अनेक प्रकार की लोक नीतियाँ निर्मित तथा क्रियान्वित की जाती हैं।

8. विधि एवं न्याय :– आधुनिक राज्यों में मुख्यतः विधि का शासन प्रवर्तित है, अर्थात् कानून सर्वोपरि है। कानून या विधि से बढ़कर कोई नही है। लोक प्रशासन का यह कर्तव्य है कि वह संविधान, कानूनों, नियमों, नीतियों तथा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार भेदभावरहित ढ़ंग से समस्त राजकीय क्रियाएँ संचालित करवाये।

9. औद्योगिक एवं आर्थिक विकास :– किसी भी राष्ट्र के सम्मुख प्रमुख चुनौती वित्तीय संसाधनों में वृद्धि तथा जनकल्याण की ही होती है। राष्ट्र के समस्त प्रकार के संसाधनों के सदुपयोग को सुनिश्चित करने व्यापार संतुलन को बनाए रखने, राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने, जीवन स्तर को उच्च बनाने, विश्व के साथ प्रतिस्पर्धा करने, वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियाँ नियंत्रित करने तथा विधि ग्राहय् मुद्रा संचालन के क्रम में लोक प्रशासन की उपादेयता स्वयंसिद्ध है।

10. आजीविका का माध्यम :– राज्य सर्वश्रेष्ठ नियोक्ता है तथा लोक प्रशासन केवल जनकल्याण तथा विकास के कार्यक्रम ही संचालित नहीं करता है। बल्कि विशाल जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराने का भी श्रेष्ठ स्थल है। लोक प्रशासन में कार्य करने वाले लोक सेवकों की प्रत्येक युग में सदैव ही एक विशिष्ट छवि रही है।

सारांशतः लोक प्रशासन सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा सामुदायिक पक्षों को प्रभावित करने वाला विषय बन चुका है।

2. लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन
(Public and Private Administration)

प्रशासन एक व्यापक एवं विस्तृत शब्द है जिसका अर्थ है 'वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक संसाधनों का संगठन और संचालन'। लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन, प्रशासन के भाग हैं। यह कार्य (मानवीय और भौतिक संसाधनों को संगठित और संचालित करना) किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है और किसी सरकारी संस्था या सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी संस्था बोर्ड, कॉरपोरेशन इत्यादि द्वारा भी किया जा सकता है। पहली अवस्था में इसे निजी प्रशासन की संज्ञा दी जाती है जबकि दूसरी अवस्था में इसे लोक प्रशासन के नाम से पुकारा जाता है। कुछ विद्वान इन दोनों (लोक प्रशासन और निजी प्रशासन) को पृथक्–पृथक् मानते हैं जबकि कुछ अन्य विद्वान इन दोनों में कोई भेद नहीं करते हैं।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताएं
(Similarities between Public and Private Administration)

एल. उर्विक, मेरी पारकर फोलेट, हेनरी फेयोल, मुने एवं रैली, लूथर गुलिक, आर. शैल्टन आदि लेखकों का विचार है

कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में कोई भेद नहीं है तथा दोनों में प्रबन्ध भी एक जैसा ही है। ये विचारक यह मानते हैं कि सभी प्रकार के प्रशासन एक ही वस्तु हैं और सब की आधारभूत विशेषताएं एक जैसी हैं। हेनरी फेयोल का कथन है, अब हमारे सामने कोई प्रशासकीय विज्ञान नहीं है बल्कि केवल एक ही है जिसे लोक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों के लिए समान रूप से भलीभांति प्रयोग किया जा सकता है। फेयोल के विचार की व्याख्या करते हुए एल0 उर्विक ने कहा है, ''गम्भीरतापूर्वक यह नहीं सोचा जा सकता कि महाजनों (Bankers) का जीव रसायन, प्राध्यापकों का शरीर क्रिया विज्ञान (Physiology) अथवा राजनीतिज्ञों का मनोचिकित्सा विज्ञान (Psychopathology) अलग–अलग हैं। इसी प्रकार किसी संगठन के विशेष स्वरूप के प्रयोजनों के आधार पर प्रबन्ध की विद्या अथवा प्रशासन का उप विभाजन करना अनेक विद्वानों की दृष्टि से गलत है।'' इन विचारकों के विचार इस बात पर निर्भर करते हैं कि लोक तथा निजी प्रशासन में कई समानताएं विद्यमान हैं।

फेयोल के अनुसार सभी संगठनों में कुछ सिद्धान्त सामान्य होते हैं जैसे (i) योजना (ii) संगठन (iii) निर्देश (iv) समन्वय और (v) नियन्त्रण इसके अतिरिक्त सभी में समान तकनीकें, जनसम्पर्क, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व आदि होते हैं जिनकी व्याख्या यहाँ की गई हैं।

1. संगठन का महत्व (Importance of Organization) प्रशासन चाहे सरकारी हो या निजी दोनों में संगठन की आवश्यकता पड़ती है। संगठन तो प्रशासन की आत्मा है। प्रशासन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का उचित गठन होना आवश्यक है तथा वह केवल किसी संगठन द्वारा ही सम्भव है। उदाहरणतः जैसे सरकार की नीतियों का निर्माण करने के लिए विधानपालिका और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए कार्यपालिका होती है इसी तरह निजी क्षेत्र में व्यवसायिक संगठनों में नीति निर्माण के लिए निर्देशन मण्डल (Board of Directors) तथा लागू करने के लिए प्रबन्धक (Managers) होते हैं।

2. समान तकनीकें (Similar Techniques) लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों प्रकार के प्रशासन में प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक तकनीकें समान हैं। लिखित हिसाब किताब रखना, फाइलें बनाना, नोट करना तथा आंकड़े उपलब्ध करना इत्यादि कुछ ऐसी क्रियायें हैं जो लोक तथा निजी प्रशासन को प्रभावित करती है। लोक निगम की उत्पत्ति एवं विकास इसका प्रमाण है। लोक निगम व्यापारिक स्वरूप तथा परम्परागत शासकीय विभाग के मध्य की स्थिति है। इस प्रकार से लोक तथा निजी प्रशासन में बहुत निकट के सम्पर्क का प्रमाण यह है कि लोक सेवाओं में निजी प्रशासन के अन्तर्गत कार्य करने वाले कर्मचारियों एवं अधिकारियों में से नियुक्तियां की जाती हैं तथा निजी प्रशासन में लोक प्रशासन के अधीन काम करने वाले असैनिक कर्मचारियों की नियुक्तियां की जाती हैं। प्रायः रिटायर हो चुके सरकारी कर्मचारियों को व्यावसायिक अथवा निजी औद्योगिक संस्थाएं अपनी सेवा में ले लेती हैं। सरकार भी गैर सरकारी सेवाओं से भर्ती कर लेती है।

3. प्रशासकीय ढांचा (Administrative Set up) दोनों प्रशासन पदसोपान के सिद्धान्त पर आधारित है। इनका प्रशासकीय ढाँचा कार्य विभाजन तथा उत्तरदायित्व पर निर्भर है। फैसले लेने की प्रक्रिया समान है तथा सांगठिक सुधार के लिए दोनों शोध तथा विकास (R&D) को अपनाते हैं।

4. अधिकारियों का समान उत्तरदायित्व (Equal Responsibility of Personnel) निजी तथा लोक दोनों प्रकार के प्रशासन के अधिकारियों के उत्तरदायित्व में समानता होती है। दोनों के पदाधिकारी जनता अथवा अपने उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं और जनता के सहयोग एवं विश्वास के बिना दोनों प्रकार का प्रशासन सफल नहीं हो सकता। इसीलिए राष्ट्रीय स्तर के कई प्रशिक्षण संस्थाओं में सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं में काम करने वाले अधिकारियों को समान प्रशिक्षण दिया जाता है जैसे हैदराबाद के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज और दिल्ली के इण्डियन इंस्टीच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में दोनों प्रकार के पदाधिकारियों के लिए कई प्रकार के सामान्य प्रशिक्षण कोर्स चलाए जाते हैं।

5. प्रगति तथा विकास (Progress and Development) प्रशासन चाहे सार्वजनिक हो या निजी दोनों का मापदण्ड विकास एवं प्रगति है। निजी प्रशासन में इस तत्त्व का यदि अभाव हो तो प्रबन्धकों को लाभ नहीं होता तथा प्रबन्ध में संशोधन के लिए पग उठाते हैं। इसी तरह यदि लोक प्रशासन द्वारा सामाजिक विकास एवं उन्नति न हो तो प्रशासकीय प्रणाली में सुधार करने के लिए प्रयास किए जाते हैं।

6. जनसम्पर्क (Public Relations) जन सम्पर्क दोनों प्रकार के प्रशासनों के लिए आवश्यक है। प्रत्येक सरकार जन सम्पर्क द्वारा लोगों को अपनी नीतियों के बारे में जानकारी देती है तथा उन नीतियों के बारे में लोगों की प्रतिक्रिया का ज्ञान प्राप्त करती है। जनसम्पर्क के महत्त्व को अनुभव करते हुए कौटिलय ने शासक के लिए जनता के साथ सम्पर्क बनाए रखने पर विशेष बल दिया है। निजी क्षेत्र में तो इसका और भी अधिक महत्त्व है। आधुनिक युग में व्यापारिक क्षेत्र में प्रतियोगिता इनती अधिक बढ़ गई है कि जन सम्पर्क के बिना किसी उद्यम का जीवित रहना सम्भव नहीं।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन : असमानताएँ

(Difference between Public and Private Administration)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच अनेक समानताएं होते हुए भी कई बातों में भिन्नताएं एवं विरोधाभास (Constrasts) पाए जाते हैं। हरबर्ट साइमन ने लिखा है कि ''सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में सार्वजनिक प्रशासन राजनीति से परिपूर्ण नौकरशाही और लालफीताशाही वाला होता है जबकि निजी प्रशासन राजनीति शून्य और चुस्ती से काम करने वाला होता है।'' सर जोसिया स्टाम्प ने लिखा है कि निम्नलिखित चार सिद्धान्तों का अनुसरण करने के कारण लोक प्रशासन, निजी प्रशासन से भिन्न है : (i) एकरूपता का सिद्धान्त, (ii) बाह्य वित्तीय नियन्त्रण का सिद्धान्त, (iii) मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त तथा (iv) सीमान्त लाभ का सिद्धान्त। इसी प्रकार **पॉल एच0 एपलबी** के अनुसार लोक प्रशासन निजी प्रशासन से तीन प्रकार से भिन्न है :– (i) इसका क्षेत्र, प्रभाव व्यापक है; (ii) यह जनता के प्रति उत्तरदायी है और (iii) इसका चरित्र राजनीतिक है। निजी तथा लोक प्रशासन के भेद को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं :

1. लाभ का तत्त्वः लाभ प्राप्त करने का लक्ष्य जो निजी प्रशासन का मूल आधार है लोक प्रशासन में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। एक व्यापारी का मुख्य प्रश्न है कि उसे क्या मिलेगा? परन्तु लोक प्रशासन के सम्मुख कार्य प्रारम्भ करने या न करने के लिए इस प्रकार का कोई सरल मापदण्ड नहीं रहता। नीग्रो के मतानुसार, ''जनता के लिए की जाने वाली सेवाएं लोक प्रशासन का वास्तविक हृदय है।'' लोक प्रशासन द्वारा जिन सेवाओं का संचालन किया जाता है वे सेवाएं प्रायः जनता की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और उनके बिना समाज का जीवन, सभ्यता और संस्कृति का विकास असम्भव हो जाता है। लोक प्रशासन की सेवाए जनता की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं सुविधा के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

2. राजनीतिक निर्देशन (Political Direction) लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में मुख्य अन्तर यह है कि लोक प्रशासन को राजनीतिक निर्देशन के अधीन रहना होता है, परन्तु निजी प्रशासन पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। लोक प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासन को राजनीतिक कार्यपालिका की ओर से मिले आदेशों का पालन करना होता है। दूसरी ओर निजी प्रशासन उद्देश्यों को स्वयं निर्धारित करता है और उसे राजनीतिक निर्णयों पर निर्भर नहीं होना पड़ता। यद्यपि परिस्थितियों के अनुसार सरकार इसके मामलों को विनियमित करने के लिए कानून बना सकती है तथापि यह काफी सीमा तक अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र होता है और सरकार इसके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती।

3. क्षेत्र में भिन्नता (Difference in Scope) लोक प्रशासन के अन्तर्गत आने वाली क्रियाओं का क्षेत्र बड़े से बड़े प्राइवेट व्यवसाय की क्रियाओं के क्षेत्र से काफी बड़ा होता है। इसलिए निजी प्रशासन का कार्यक्षेत्र लोक प्रशासन की अपेक्षा संकुचित और सीमित होता है। एक कल्याणकारी राज्य में सरकार के कार्य दिन–प्रतिदिन बढ़ते ही जा

रहे हैं। दूसरी ओर निजी प्रशासन का सम्बन्ध मुख्यतः लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं से रहता है जैसे वस्त्र निर्माण, चीनी का वितरण आदि। लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में देश की रक्षा और शान्ति की व्यवस्था तथा कुछ सेवा कार्यों जैसे प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, वित्त, रेल व्यवस्था, डाक व तार तथा संचार व्यवस्था आदि पर एकाधिकार। साथ ही प्राकृतिक आपातकाल में पुर्नवास तथा अक्समात् सहायता भी प्रदान करता है।

4. सार्वजनिक दायित्व (Public Responsibility) लोक प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है, परन्तु निजी प्रशासन लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। लोक प्रशासन व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका द्वारा नियन्त्रित होता है। सरकारी अधिकारियों के सभी कार्यों के गुण तथा दोषों की विवेचना की जाती है। जनमत सबसे बड़ा प्रतिरोध है जो लोक प्रशासन को मनमानी करने से रोकता है। निजी व्यवसायों में जनता द्वारा इतनी अधिक सूक्ष्म जांच पड़ताल नहीं की जाती और न ही वे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

5. कानूनों व नियमों का प्रभाव (Impact of Rules and Laws) लोक प्रशासन अपेक्षाकृत कानूनों एवं नियमों से अधिक नियमित होता है, इनता निजी प्रशासन नहीं होता, इसमें खरीदारी, ठेके, टेण्डर आदि सभी कार्य कुछ निश्चित नियमों के अनुसार किए जाते हैं। निजी उद्योगों में सुविधानुसार व्यवहार न केवल आपत्तिविहीन है अपितु प्रशासनीय है।

6. पारदर्शिता (Transparency) यद्यपि लोक प्रशासन के बहुत से कार्य (जैसे निर्णयन) गोपनीय भी होते हैं तथापि इसके अधिसंख्य कार्य जनता के सामने रहते हैं। निजी प्रशासन के कार्य एवं निर्णय सभी, बन्द कमरों में जनता की निगाह से दूर रहते हैं। नागरिक अधिकार पत्र (Citizens Charter) तथा सूचना का अधिकार तथा उपभोक्ता संरक्षण कानून के कारण प्रशासनिक पारदर्शिता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। लोक प्रशासन में भेदभाव करना सहज नहीं है जबकि निजी प्रशासन की यह प्रवृत्ति है।

7. वित्तीय नियन्त्रण की दृष्टि से अन्तर (Difference in view of Financial Control) लोक प्रशासन में वित्त तथा प्रशासन पृथक् कार्य करते हैं जबकि निजी प्रशासन में ऐसा नहीं होता। निजी व्यवसाय में धन निवेशकर्ता के पास रहता है और वह धन को किस प्रकार व्यय करता है, इसके बारे में वह किसी के भी प्रति उत्तरदायी नहीं होता। लोक प्रशासन में जब सरकारी अधिकारी सार्वजनिक धन को खर्च करते हैं तो जनता के प्रतिनिधि के रूप में व्यवस्थापिका उन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है।

8. संविधान का प्रभाव (Impact of Constitution) किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है जैसा कि संविधान कहता है। संविधान में वर्णित आदर्शों, मौलिक अधिकारों, नीति निर्देशक तत्त्वों तथा अन्य प्रावधानों के अनुरूप लोक प्रशासन को अपना कार्य संचालन करना होता है जबकि निजी प्रशासन संवैधानिक आदर्शों से प्रेरित नहीं होता है बल्कि निजी हितों के अनुसार संचालित होता है।

9. दबाव (Pressure) लोक प्रशासन में, विशेषतः सरकार के उच्च स्तरों पर अनेक प्रकार के दबाव सदैव बने रहते हैं। नाना प्रकार के आर्थिक, रानजीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, स्थानीय तथा प्रान्तीय दबावों के मध्य प्रशासकों को निर्णय करने पड़ते हैं। स्वतंत्र प्रेस, राजनीतिक दल, दबाव समूह, कानूनी प्रावधान, मानवीय हित, सरकार की लोकप्रियता तथा संगठन के उद्देश्य इत्यादि ऐसे दबाव हैं जो शीघ्र निर्णय में बाधा बनते हैं जबकि निजी प्रशासन निर्णय करने में स्वतंत्र होता है, क्योंकि दबाव तथा जटिलतायें प्रायः नहीं होती हैं।

10. संगठनात्मक स्थायित्व (Organizational Stability) सरकारों का स्वरूप परिवर्तित हो सकता है किन्तु लोक प्रशासन प्रत्येक स्थिति में बना रहता है। जहाँ तक प्रशासनिक संगठनों के स्थायित्व का प्रश्न है, लोक प्रशासन से सम्बन्धित संगठन अधिक स्थायी होते हैं क्योंकि वे दीर्घकालीन उद्देश्य से बनाये जाते हैं। लोक प्रशासन संगठन अधिक जटिल होते हैं तथा उनमें परस्पर समन्वय भी कठिन रहता है। जबकि निजी प्रशासन में संक्षिप्तता, पृथकता तथा स्वायत्तता पाई जाती है।

11. समान व्यवहार (Uniform Treatment) लोक प्रशासन जनता के साथ समान व्यवहार करता है। सरकारी अधिकारियों के सम्मुख निश्चित नीति रहती है जिसका पालन करना अनिवार्य हाता है। वे नियम एवं परम्पराओं के अनुकूल होते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत प्रशासन में इस प्रकार के समान व्यवहार की आवश्यकता नहीं रहती और बिना किसी दोष का भागी बने ही वह अपने ग्राहकों के एक वर्ग के साथ विशेष सम्बन्ध बनाये रख सकता है। रिचर्ड वारनर (Richard Warner) के शब्दों में, निजी प्रशासन को व्यापारिक व्यवहार की समरूपता के लिए अधिक चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है, यह तो जन विरोध का तूफान खड़ा किए बिना ही सरलता से पूरा कर सकता है, किन्तु यदि शासन धनिकों के लाभ के लिए एक कानून और निर्धनों के लिए दूसरा कानून बनाने लगे तो लोक विरोध की आँधी आ जाएगी।

12. राष्ट्र निर्माण (Nation Building) लोक प्रशासन का यह दायित्व है कि वह राष्ट्र निर्माण के लिए समस्त प्रयास करे तथा सभ्यता एवं संस्कृति को जीवंत बनाये रखे जबकि निजी प्रशासन के लिए ऐसी कोई बाध्यता नहीं है। राष्ट्र, समाज, संस्कृति, मूल्य, सुरक्षा, नैतिकता तथा मानवता के समस्त दायित्व लोक प्रशासन के कन्धों पर है। संकट के समय सभी लोक प्रशासन की ओर आशा भरी नजरों से देखते हैं। निजी प्रशासन राष्ट्र निर्माण में सहयोग तो दे सकता है किन्तु स्वार्थपूर्ति एवं लाभ के बाद।

संक्षेप में, लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में गहरा अन्तर है। लोक प्रशासन तो उस शीशे के घर के समान है जिसमें काम करने वाले सदैव जनता की निगाह में रहते हैं। लोक कर्मचारियों के सारे क्रियाकलाप जनता बड़ी उत्सुकता से देखती रहती है और उनकी आलोचना भी होती रहती है। यह बात निजी प्रशासन में काम करने वाले कर्मचारियों के बारे में नहीं कही जा सकती।

3. लोक प्रशासन : विज्ञान या कला

लोक प्रशासन का दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है। प्रथम रूप में लोक प्रशासन एक प्रक्रिया है, दूसरे रूप में अध्ययन का विषय है। लोक प्रशासन निश्चित रूप से एक कला है। परंतु सवाल यह उठता है कि प्रशासकीय मामलों के अध्ययन के विषय के रूप में लोक प्रशासन को विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है या नहीं।

विज्ञान क्या है?

सबसे पहले यह जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है कि आखिर विज्ञान है क्या? यह मानें तो तथ्यों के आधार पर क्रमबद्ध ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। विज्ञान यानी विशेष ज्ञान। विज्ञान क्या है उसके परिणाम क्या होंगे? इस बात पर बल दिया जाता है। यह सही ज्ञान व सिद्धांतों का सम्मलित रूप है जो निश्चित क्षेत्र के अंदर प्रत्येक संबंधित तथ्य की व्याख्या कर सकता है। इसके आधार पर भावी घटनाओं के विषयों में सहज रूप से भविष्यवाणी की जा सकती है।

ए.डब्ल्यू. ग्रीन के अनुसार विज्ञान खोज का तरीका होता है।

कार्ल पियरसन के अनुसार तथ्यों को बांटना व क्रमबद्ध स्वीकार करना ही विज्ञान का कार्य होता है। विज्ञान का केंद्र उसकी पद्धति होती है न कि अध्ययन सामग्री।

मैगनस के अनुसार विज्ञान एक चिंतन की भाषा है लेकिन यह केवल तकनीकी आधार पर अग्रसर होती है। जॉर्ज सेंटायना ने लिखा है कि विज्ञान विकसित ज्ञान के अलावा और कुछ भी नहीं है।

उपरोक्त विद्वानों द्वारा बताये गये विज्ञान की परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं। कि किसी भी विषय का ज्ञान होने के लिए निम्न बातों का होना जरूरी है।

1. पूर्वानुमान, 2. परीक्षण, 3. वर्गीकरण, 4. अनुसंधान, 5. सही निष्कर्ष, 6. सारणीकरण, 7. यथार्थता, 8. संबंध, 9. कल्पना

क्या लोक प्रशासन में उपरोक्त लक्ष्ण पाए जाते हैं? प्रशासन विज्ञान की इन कसौटियों पर खरा उतरता है। इसमें विचारकों के अलग–अलग विचार हैं। विलोबी, लूथर गुलिक, एल. उरविक, चार्ल्स ए. बेयर्ड, वूडरो विलसन आदि का मानना है कि लोक प्रशासन में वे सभी तत्व पाए जाते हैं जो इसे विज्ञान का दर्जा हासिल करवा सकते हैं लेकिन कुछ विचारकों का मत अलग है। उनमें हरमन फाइनर, टेलर, फिफनर, रिग्ज का मानना है कि लोक प्रशासन में इन तत्वों का अभाव है इसलिए लोक प्रशासन को विज्ञान न माना जा सकता है।

लोक प्रशासन के विज्ञान होने के पक्ष में विचार

1. क्रमबद्ध अध्ययन – क्रमबद्ध ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन क्रमबद्ध तरीकों से किये जाने के कारण ही लोक प्रशासन एक विज्ञान है।
2. शोध व नये प्रयोग – लोक प्रशासन के क्षेत्र में नये–नये प्रयोग किये जाते है। प्रशासनिक तकनीकी से संबंधित विषयों पर खोज करके नयी संभावनाओं का पता लगाया जाता है। 'प्रो. चालर्स ए. बेयर्ड' के विचारों से लोक प्रशासन में ऐसे नियमों का विकास हो गया है जिसके अनुभव के आधार पर यह पता चलता है कि उन्हें निशचित व्यवहार में लागू किया जा सकता है व उन पर भविष्यवाणी की जा सकती है।
3. पूर्वानुमान – चार्ल्स ए. बेयर्ड के अनुसार लोक प्रशासन में घटनाओं का अध्ययन करके अनुमान लगा सकते हैं कि घटनाओं के क्या–क्या परिणाम होंगे। पूर्व प्रशासन द्वारा उठाये गये कठोर कदमों के अच्छे परिणाम सामने आए हैं और आगे भी अच्छे परिणाम सामने आएंगे।
4. वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग – विज्ञान की तरह इसमें आंकडों व तथ्यों का अध्ययन किया जाता है और निशचित परिणाम पर पहुंचा जाता है। अध्ययन करने के बाद सामान्य नियमों को बनाया जाता है। इसी आधार पर लोक प्रशासन एक विज्ञान कहलाता है।
5. आधारभूत सिद्धांतों का आकलन – आधारभूत सिद्धांतों का होना आवश्यक है। यह सिद्धांत निम्न हैं। क. आदेश की एकता, ख. नियंत्रक के क्षेत्र, ग. आंतरिक निरीक्षण आदि।

टेलर तथा फेयोल के द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत ने भी प्रशासन की वैज्ञानिकता को मजबूत बनाया है।

6. एक विशेष तकनीकी की आवश्यकता – संबंधित विषय के विशेष तकनीक संबंधित ज्ञान का होना आवश्यक होता है। प्रशासन को भी अपने कार्यों का सही संचालन करने के लिए एक विशेष प्रकार की तकनीक को अपनाने की आवश्यकता होती है। लोक प्रशासन विशेष तकनीकी का ज्ञान देता है तथा प्रशासन में प्रयोग करता है।

लोक प्रशासन के विज्ञान होने के विपक्ष में विचार

1. मानवीय व्यवहार का प्रभाव – लोक प्रशासन की सफलता मानव व्यवहारों पर निर्भर करती है। व्यक्तिगत व्यवहार अनिशचित होता है उनमें आदतों, भावना. संदेह, भय व अरुचि के कई कारण सामने आते हैं। विज्ञान में इस प्रकार का संदेह नहीं होता। मानव व्यवहार परिवर्तनशील होता है। इसी कारण मानव व्यवहार की अनिशचितता के कारण भी लोक प्रशासन को विज्ञान नहीं माना जाता है।
2. लोक प्रशासन का आदर्श होना – इसमें नैतिक मूल्यों, भावनाओं, मानवीय व्यवहारों एवं आदर्शों को स्थान दिया जाता है। प्रशासन जनता के हित की पूर्ति के लिए होता है। इसमें जो लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं उनमें नैतिकता और आदर्श होता है। अत वह विषय जो नैतिकता, भावनात्मकता और आदर्श से प्रेरित होता है वह कभी भी विज्ञान नहीं होता है।

3. पूर्व कथनीयता का अभाव – लोक प्रशासन में कोई भी निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जाती है। यदि भविष्यवाणी की भी जाती है तो उसके सत्य होने का दावा नहीं किया जा सकता है। कारण कि लोक प्रशासन व्यक्तियों की प्रशासकीय समस्याओं का अध्ययन करता है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के प्रयोगों में परिणामों के बारे में भविष्यवाणी की जाती है उसी प्रकार प्रशासन में भविष्यवाणी नहीं की जाती है।

4. एकरूपता का प्रयोग – वैज्ञानिक प्रयोगों और तथ्यों के परिणाम भी एक समान होते हैं लेकिन वैज्ञानिक सिद्धांतों में एकरूपता नहीं होती है। प्रशासन सफल राजनीतिक व्यवस्था के लिए संसदीय पद्धति को उचित मानता है। दूसरा अध्यक्षात्मक प्रणाली को। लोक प्रशासन के व्यक्तिगत व्यवहार में एकजुटता नहीं होती है जबकि लोक प्रशासन का संबंध व्यक्तिगत व्यवहार से होता है। इसी कारण इसको विज्ञान का दर्जा नहीं दिया जा सकता है।

5. सिद्धांतों की अनिश्चितता – लोक प्रशासन के सिद्धांत स्थायी नहीं होते हैं क्योंकि उन पर घटना के ढंग, स्थान की परिस्थतियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। लोक प्रशासन के सिद्धांत भौतिक एवं रसायन शास्त्र की तरह मजबूत व स्थायी नहीं होते हैं। यही कारण है कि लोक प्रशासन विज्ञान होने की इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

6. परीक्षण का अभाव – लोक प्रशासन में ऐसी कोई प्रयोगशाला नहा होती है। जिसमें निरीक्षक बैठ कर उसका प्रयोग कर सके। निरीक्षण व परीक्षण दोनों ही विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत माने जाते हैं। लोक प्रशासन इसको पूरा नहीं करता है। इसी कारण इसे विज्ञान नहीं माना जाता है।

लोक प्रशासन विज्ञान नहीं, सामाजिक विज्ञान

लोक प्रशासन के विज्ञान होने न होने के पक्ष व विपक्ष के बारे में जानने के बाद हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि लोक प्रशासन में पूर्णता, निश्चितता, सत्यता, पर्यवेक्षण और परीक्षण का अभाव है। यह प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञान तथा मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।

सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान में अंतर

सामाजिक विज्ञान	प्राकृतिक विज्ञान
1. सामाजिक विज्ञान में कम यथार्थवाद होता है।	1. प्राकृतिक विज्ञान में ज्यादा यथार्थवाद होता है।
2. इनमें सामाजिक नियम पाये जाते है।	2. इसमें भौतिक नियम पाये जाते है।
3. इनमें समाज के मनौवैज्ञानिक संबंध पाये जाते है।	3. इसमें भौतिक तत्वों में भौतिक संबंध पाये जाते है।
4. सामाजिक विज्ञानों में भविष्यवाणी करना प्रायः कठिन होता है।	4. प्राकृतिक विज्ञानों के सिद्धांतो के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है।
5. इनकी अध्ययन वस्तु अमूर्त होती है।	5. इसकी अध्ययन वस्तु मूर्त होती है।
6. सामाजिक विज्ञानों की विषय वस्तु व्यक्ति तथा समाज हे।	6. प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु भौतिक पदार्थ है।
7. सामाजिक विज्ञानो की विषय वस्तु व्यक्ति तथा समाज है।	7. प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु भौतिक पदार्थ है।

8. सामाजिक तत्वों को सहजता से अलग नहीं किया जा सकता है।	8. भौतिक पदार्थों को विश्लेषण के माध्यम से अलग किया जा सकता है।
9. समाजिक विज्ञानों के अध्ययन में पक्षपात तथा व्यक्तिगत मूल्य प्रभाव दिखाते है।	9. प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन पूर्ण तटस्थता से किये जाते हैं।
10. इन विज्ञानों की प्रयोगशाला है न उपकरण, न ही परीक्षण कार्य सरल होता है।	10. इन विज्ञानों के नियमों का प्रयोगशाला में परीक्षण किया जाता है।

सत्य है कि यदि मानव में यह विशेषता न होती तो मानव यंत्र मात्र बनकर रह जाता और मानव जीवन के लिए एक अभिशाप होता। यह गर्व का विषय है कि मानव चिंतन करता है। यहां तक देखा जा सकता है कि एक ही व्यक्ति समान स्थितियों में एक सा ही प्रत्युतर नहीं देता। अतः मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाले विषय निश्चित ही अधिक कठिन हैं। उनका दर्जा किसी भी प्रकार से प्राकृतिक विज्ञान से कमतर नहीं है।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि लोक प्रशासन सहित कोई भी सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञानों की भाषा में विज्ञान नहीं है, किंतु निश्चित ही लोक प्रशासन एक उभरता हुआ प्रमुख सामाजिक विज्ञान है।

लोक प्रशासन एक कला के रूप में

कला का अर्थ उसके तौर तरीकों से लगाया जाता है। किसी ज्ञान को प्राप्त करना व उसका प्रयोग करना।

डॉ. एम.पी. शर्मा के अनुसार कला का अपना कौशल होता है। वह व्यवस्थित ढंग से व्यवहार में अपनायी जाती है।

ग्लैडन ने कहा है कि कला मानव की योग्यता से संबंधित ऐसा ज्ञान है जिस पर सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है।

ऑर्डवे टीड के अनुसार इसको ललित कला बताया गया है। सामाजिक विज्ञानों के कला पक्ष में निम्न लक्षणों को वर्णित किया गया है

1. व्यक्तिगत गुण कलाकर में जन्मजात होते हैं। जिसको प्रशासन संचालन की कला आती है वह विपरीत परिस्थितियों में भी श्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है।
2. कला का दुसरा गुण सत्यम् शिवम् सुन्दरम है। यह सत्य को प्रमाणित करता है। हम कह सकते है कि आज का लोक प्रशासन स्वयं के लिए कम तथा समाज के लिए अधिक है।
3. प्रत्येक कला में सृजनात्मक क्षमता होती है। प्रत्येक कलाकार अपनी कला का प्रत्यक्ष प्रदर्शन कर संतोष प्राप्त करता है तथा उसमें नये प्रयोग करता है।
4. लोक प्रशासन सिद्धांतों को व्यवहार में लागू करता है तथा व्यवहार से सिद्धांत निर्मित करता है। मानव व्यवहार का समाज रूपी प्रयोगशाला में परीक्षण किया जाता है।
5. प्रत्येक कला की अभिव्यक्ति का कोई माध्यम या साधन अवश्य होता है। प्रशासन को यदि एक कला मानें तो इसमें मुख्य तीन माध्यम हैं–

   (1) संगठन स्वयं एक अभिव्यक्ति है

   (2) संगठन के उद्देश्यों के रूप में

(3) सामाजिक पर्यावरण या परिवेश के रूप में।

जिस प्रकार लोक प्रशासन के विज्ञान होने या न होने के संबंध में विवाद खड़े किये जाते हैं लोक प्रशासन विज्ञान की कसौटियों का सामना नहीं कर पाता। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशासन एक ऐसा कौशल है जिसमें एक विशेष दृष्टिकोण, विशेषज्ञान, विशेष रूचि तथा परीक्षण की आवश्यकता होती है।

4. लोक प्रशासन का विषय के रूप में विकास

(Evolution of Public Administration as a Discipline)

हालांकि क्रिया के रूप में लोक प्रशासन प्राचीनतम काल से ही मानव समाज में रहा है, किन्तु ज्ञान और अध्ययन की शाखा के रूप में इसका विकास अर्वाचीन है जो 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से आगे नहीं जाता। यह पूरा सत्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि प्रशासनिक विचारधारा चिंतन की अन्य सम्बन्धित शाखाओं, जैसे – राजनीति, आचार शास्त्र, तथा विधि से चिरकाल तक निभन्न न की जा सकी। रामायण और महाभारत जैसे बड़े–हिन्दू महाग्रंथों में राजनीति के साथ–साथ पर्याप्त प्रशासनिक चिंतन भी है। विधिग्रंथ जैसी स्मृति प्रशासन तथा न्यायिक संगठन का विस्तृत ब्यौरा देती है। कौटिल्य (चाणक्य) का अर्थशास्त्र, प्राचीन चीन में कनफुशियस (Confucius), अरस्तू के 'पॉलिटिक्स' (Politics), मैकियावली (Machiavelli) का ग्रंथ 'प्रिंस' (Prince) आदि प्रशासन और तन्त्र कला विषयों पर विचार करते हैं। किन्तु, एक भिन्न अध्ययन के विषय के रूप में प्रशासन को स्पष्ट मान्यता नहीं दी गई। वास्तविकता यह है कि 'लोक प्रशासन' शब्दावली का प्रयोग भी 17वीं शताब्दी से पूर्व देखने को नहीं मिलता। 'फेडरलिस्ट' (Federalist) जिसका संकलन अमरीका में 18वीं शताब्दी के अन्त में किया गया, में हैमिल्टन (Hamilton) का एक लेख छपा था जिसमें लोक प्रशासन की परिभाषा तथा क्षेत्र दिये गये थे। फ्रांस में 1812 में प्रथम बार इस विषय पर पृथक शोध प्रबन्ध (Treatise) प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक थे चार्ल्स जीन बौनिन (Charles Jean Bounin) तथा शीर्षक था– 'प्रिंसिपल्ज डी ऐडमिनिस्ट्रेशन पब्लिक' (Principles d' Administration Publique)। लेकिन राजीनति, आचारशास्त्र, इतिहास, तत्त्वमीमांस आदि की तरह लोक प्रशासन के क्षेत्र में निरन्तर ऐसे ग्रन्थ नहीं लिखे गये तथा लोक प्रशासन को पृथक् तथा स्वतंत्र विषय का सम्मान प्राप्त नही हुआ। परन्तु ज्यों–ज्यों प्रशासन के कार्यों व प्रक्रियाओं का दृश्य प्रभाव लोगों के दैनिक जीवन पर निरन्तर पड़ने लगा, तो इसकी प्रक्रिया और समस्याओं के बाहर भी रूचि बढ़ने लगी और लोक प्रशासन पर सैद्धान्तिक व शैक्षिक चर्चा की शुरूआत हुई।

इसकी शुरूआत संयुक्त राज्य अमरीका में की गई जहाँ सरकारी तथा प्रशासनिक क्रियायें को सरल बनाने पर ध्यान दिया गया ताकि वे साधारण व्यक्ति की समझ में आ जाएं। 19वीं शताब्दी के आठवें दशक तक लोकतंत्र की जैक्सन (Jackson) द्वारा दी गई धारणा का प्रभाव था जो पद पुरस्कार व्यवस्था (Spoils System) के तहत लोकसेवा और बजट बनाने की प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित थी। इसके परिणाम थे– अकुशलता, रिश्तवखोरी तथा भ्रष्टाचार, जिनसे सार्वजनिक हितों को हानि पहुँची। अतः एक सुधार आंदोलन आरम्भ हुआ जिसका सूत्रपात 1880 में पारित पैंडल्टन एक्ट (Pendleton Act) से हुआ जिसके तहत संघीय लोकसेवा में सीमित रूप में योग्यता पर आधारित (Merit System) भर्ती व्यवस्था लागू की गई। साथ ही साथ लोकप्रशासन को एक स्वतंत्र अध्ययन के विषय में विकसित करने का आन्दोलन भी शुरू हुआ। इसको प्रारम्भ करने का श्रेय वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) को जाता है जिसने अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' (The Study of Administration) जो 1887 में प्रकाशित हुआ, में इस शास्त्र की वैज्ञानिक बुनियादों को विकसित करने की आवश्यकता पर जोर, दिया। इस लेख में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट भिन्नता दिखाई गई और घोषित किया गया कि प्रशासन को राजनीति से दूर रहना चाहिए। इसी को तथाकथित 'राजनीति प्रशासन द्विभाजन (dichotomy) कहते हैं। गुडनो

(Goodnow) ने विल्सन का अनुकरण किया। उसने सरकार के दो पृथक् कार्यों 'राजनीति' का सम्बन्ध नीतियों से अथवा राज्य की इच्छा को प्रकट करने से है, प्रशासन का सम्बन्ध इन नीतियों को लागू करने से है। प्रशासन में विधि को लागू करने के साथ–साथ अर्ध वैज्ञानिक, अर्ध न्यायिक तथा अर्ध व्यापारिक या वाणिज्यिक कार्य भी सम्मिलित होते हैं।

लोक प्रशासन के विकास की प्रक्रिया के चरण

लोक प्रशासन के विषय रूप विकास को मुख्य रूप से निम्न चरणों में बाँटा जा सकता है :–

प्रथम चरण (1887–1926) एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का जन्म 1887 में हुआ। अमेरिका के प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी में राजनीतिशास्त्र के तत्कालीन प्राध्यापक वुडरों विल्सन* को इस शास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने 1887 में प्रकाशित अपने लेख 'प्रशासन का अध्ययन' (The Study of Administration) में राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग बताते हुए कहा ''एक संविधान का निर्माण सरल है पर इसे चलाना बड़ा कठिन है।'' उन्होंने इस 'चलाने' के क्षेत्र के अध्ययन पर बल दिया जो स्पष्टतः 'प्रशासन' ही है। सन् 1887 में विल्सन के लेख के प्रकाशन के साथ वास्तव में एक ऐसे नए युग का जन्म हुआ जिसमें धीरे–धीरे लोक प्रशासन अध्ययन के एक नए क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य देशों की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक प्रशासन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा। वहीं प्रशासन एक विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है।

वुडरो विल्सन के अनुसार लोक प्रशासन सरकार का सबसे स्पष्ट भाग है यह क्रियाशील या सक्रिय सरकार है। फिर भी इसे एक अध्ययन विषय के रूप में अभ्युदित होने के लिए 19वीं शताब्दी के मध्य तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसके कारण थे राजनीति द्वारा संविधान, राज्य की प्रकृति, सम्प्रभुसत्ता की विशेषता, राजा के अधिकारों आदि पर ध्यान देना। सरकार के कार्य सरल थे क्योंकि स्वयं जीवन ही सरल था। परन्तु समय के साथ–साथ प्रशासनिक कार्य जटिल एवं चुनौतीपूर्ण हो गये जिसके कारण प्रशासन विज्ञान का उदय हुआ। लोक प्रशासन के माध्यम से सरकार के कार्यों को सुगम और इसके कार्यों में कर्त्तव्य भावना डालने का प्रयत्न किया गया।

प्रशासन के विज्ञान का विकास जर्मनी और फ्रांस में किया गया था लेकिन ये देश केन्द्रीयकृत तथा संघन थे। इस विज्ञान की आवश्यकता संयुक्त राज्य अमेरिका में पड़ी। जैसा कि वुडरो विल्सन ने कहा है कि ''हमें इसका अमरीकीकरण करना होगा; केवल औपचारिकता से नहीं, मात्र भाषा से नहीं; लेकिन प्रगतिशील रूप में, विचारों में, सिद्धान्तों और लक्ष्यों में भी। इसे हमारे संविधान को कंठस्थ करना होगा, इसकी रक्त वाहिनियों से नौकरशाही बुखार को बाहर करना होगा और स्वतंत्र अमरीकी वायु का श्वसन करना होगा।

वुडरो विल्सन के लेख 'प्रशासन का अध्ययन', जिसे वह 'नम्रता से प्रशासनिक अध्ययनों का अर्ध–जनप्रिय परिचय कहते हैं, में प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में प्रशासन की समस्याओं और विशेषताओं को निश्चित करते हैं। उनके अनुसार लोक प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है यह राजनीति के संघर्ष और जल्दबाजी से पृथक है ... प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते क्योंकि ये प्रबन्ध से सम्बन्धित होते हैं। एक प्रशासनिक अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि सरकार सही और सफलतापूर्वक क्या कर सकती है और इन्हें पूर्ण सम्भव कार्यकुशलता और मितव्ययता से कैसे कर सकती है। प्रशासन के कार्य निष्पक्ष, व्यापक और प्रबन्धकीय होते हैं। प्रशासन की प्रक्रियाएं और तकनीकें होती हैं जो सार्वभौमिक रूप से लागू होती हैं। प्रशासन ज्ञान का क्षेत्र है जिसे महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में ग्रहण किया जा सकता है, प्रशासन राजनीति से अलग है। इस प्रकार विल्सन ने लोक प्रशासन को एक स्वतंत्र अध्ययन विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया।

इस विषय के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रणेता फ्रैंक गुडनाव हैं जिन्होंने 1900 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'राजनीति और प्रशासन' (Politics and Administration) में यह तर्क प्रस्तुत किया कि राजनीति और प्रशासन अलग अलग हैं क्योंकि जहाँ राजनीति राज्य इच्छा को प्रतिपादित करती है वहाँ प्रशासन का सम्बन्ध इस इच्छा या राज्य नीतियों के क्रियान्वयन से है। 1914 में अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा कि सरकार के काम करने के लिए कुशल व्यक्तियों की पूर्ति करना राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का एक लक्ष्य है। फलस्वरूप लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का एक प्रमुख अंग बन गया और इसके अध्ययन अध्यापन को भारी प्रोत्साहन मिला। सन् 1926 में एल0डी0 व्हाइट की पुस्तक 'लोक प्रशासन के अध्ययन की भूमिका' (Introduction to the Study of Public Administration) प्रकाशित हुई। वह लोक प्रशासन की प्रथम पाठ्यपुस्तक थी जिनमें राजनीति प्रशासन के अलगाव में विश्वास व्यक्त किया गया और लेखक ने अपनी यह मान्यता प्रकट की कि लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता और मितव्ययता है। इस प्रथम चरण की दो प्रमुख विशेषताएं रहीं– लोक प्रशासन का उदय और राजनीति एवं प्रशासन के अलगाव में विश्वास।

द्वितीय चरण (1927–1937) लोक प्रशासन के इतिहास में द्वितीय चरण का प्रारम्भ हम डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी की पुस्तक 'लोक प्रशासन' के सिद्धान्त (Principles of Public Administration) से मान सकते हैं। विलोबी ने यह प्रतिपादित किया कि लोक प्रशासन में अनेक सिद्धान्त हैं जिनको क्रियान्वित करके लोक प्रशासन को सुधारा जा सकता है। वास्तव में यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि व्हाइट और विलोबी के दोनों प्रवर्तक ग्रन्थों ने लोक प्रशासन सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन और अध्ययन की पद्धति का निर्धारण किया और इन दोनों में सिद्धान्तों को मोटे तौर पर पहचाना और परिभाषित किया गया है। विलोबी की उपरोक्त पुस्तक के बाद अनेक विद्वानों ने लोक प्रशासन पर पुस्तकें लिखनी शुरू कीं, जिनमें कुछ उल्लेखनीय नाम हैं– मेरीपार्कर फोलेट, हेनरी फेयोल, मुने, रेली आदि। 1937 में लूथर गुलिक तथा उर्विक ने मिलकर लोक प्रशासन पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक का सम्पादन किया जिसका नाम है 'प्रशासन विज्ञान पर निबन्ध' (Papers on the Science of the Administration)। द्वितीय चरण के इन सभी विद्वानों की यह मान्यता रहीं कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है और इसीलिए इसके आगे 'लोक' शब्द लगाना उचित नहीं है। सिद्धान्त तो सभी जगह लागू होते हैं, चाहे वह 'लोक क्षेत्र' हो या 'निजी क्षेत्र' हो।

तृतीय चरण (1938–1947) अब प्रशासन में सिद्धान्तों को चुनौती देने का युग प्रारम्भ हुआ। सन् 1938 से 1947 तक का चरण लोक प्रशासन के क्षेत्र में ध्वंसकारी अधिक रहा। सन् 1938 में चेस्टर बर्नार्ड की 'कार्यपालिका के कार्य' (The Functions of the Executive) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें प्रशासन के किसी भी सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया गया। सन् 1947 में हर्बर्ट साइमन ने अपने एक लेख 'प्रशासनिक व्यवहार' (Administrative Behaviour) में लोक प्रशासन के तथाकथित सिद्धान्तों को नकारते हुए इन्हें 'किंवदंतियों' (Proverbs) की संज्ञा दी। सन् 1947 में राबर्ट डहाल ने अपने एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है और इसके सिद्धान्त की खोज में मुख्यतः तीन बाधाओं का सामना करना पड़ता है :–

(i) विज्ञान 'मूल्य शून्य' होता है जबकि प्रशासन 'मूल्य बहुल' है;

(ii) मनुष्यों के व्यक्तित्व समान नहीं होते और फलस्वरूप प्रशासन के कार्यों में विभिन्नता आ जाती है;

(iii) वह सामाजिक ढांचा भी एक बाधा है जिसके अन्तर्गत लोक प्रशासन पनपता है।

इस तृतीय चरण की प्रधनता यही रही कि लोक प्रशासन का अध्ययन चुनौतियों और आलोचनाओं का शिकार बना, जिससे इस विषय की नई संभावनायें उजागर हुईं।

चतुर्थ चरण (1948–1970) यह चरण इस रूप में क्रांतिकारी अथवा 'संकट का काल' रहा कि लोक प्रशासन जिन जिन उपलब्धियों के गीत गा रहा था उन सभी को बेकार ठहरा दिया गया। हर्बर्ट साइमन ने जो युक्तिसंगत आलोचना की उसके फलस्वरूप 'सिद्धान्तवादी' विचारधारा अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी। लोक प्रशासन के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक संदेह उठ खड़े हुए, यह विवाद का विषय बन गया। इसलिए 1948 से 1970 के चरण को लोक प्रशासन के 'स्वरूप की संकटावस्था' (Crisis of Identity) कहा गया है। इस युग में लोक प्रशासन ने मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाये :–

(i) कुछ विद्वान राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत आ गए; (ii) लोक प्रशासन के विकल्प की खोज हुई।

लोक प्रशासन सौतेलेपन और अकेलेपन का अनुभव करने लगा। लोक प्रशासन के लिए जिस विकल्प की खोज हुई, वह था 'प्रशासनिक विज्ञान' (Administrative Science)। लोक प्रशासन, व्यापार प्रबन्ध (Business Administration) आदि ने मिलकर प्रशासनिक विज्ञान की नींव डाली। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रशासन तो प्रशासन ही है, चाहे वह निजी क्षेत्र में हो या सार्वजनिक क्षेत्र में। 1956 में 'एडमिनिस्ट्रेटिव साइन्स क्वार्टरली' (Administrative Science Quarterly) नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। वास्तव में यह बहुत अखरने वाली बात थी कि लोक प्रशासन के अपने 'निजी स्वरूप' को कई आघात पहुँचे।

पंचम चरण (1971 से 1990 तक) चतुर्थ, चरण की आलोचनाओं और चुनौतियों ने कुल मिलाकर लोक प्रशासन के विकास में सहायता की। लोक प्रशासन का अध्ययन बहुचर्चित हो गया, नए नए दृष्टिकोण विकसित हुए और फलस्वरूप लोक प्रशासन चहुँमुखी प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विभिन्न शास्त्रों के विद्वान और अध्येता लोक प्रशासन में रूचि लेने लगे। राजनीतिशास्त्र के अध्येता तो प्रारम्भ से ही लोक प्रशासन के अध्ययन में रूचि ले रहे थे। इन विभिन्न अध्ययनों और प्रयत्नों के फलस्वरूप लोक प्रशासन 'अन्तर्विषयी' (Interdisciplinry) बन गया और आज यह तथ्य है कि समाजशास्त्रों में यदि कोई विषय सबसे अधिक 'अन्तर्विषयी' है तो वह लोक प्रशासन ही है। इससे लोक प्रशासन के वैज्ञानिक स्वरूप का विकास हुआ। इतना ही नहीं इससे लोक प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार होता गया।

इससे तुलनात्मक लोक प्रशासन (Comparative Pubic Administration), विकास प्रशासन (Develoment Adminsitration) और नवीन लोक प्रशासन (New Public Adminisration) का प्रादुर्भाव हुआ। परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता, अनुसंधान के नए उपकरणों और नवीन सामाजिक संदर्भ, अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता आदि ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को जन्म दिया और उसे आगे बढ़ाया। लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामों और प्रविधियों का लोक प्रशासन के स्वरूप पर गंभीर प्रभाव पड़ा। यह तथ्य उत्साहवर्धक और हर्षवर्धक है कि लोक प्रशासन में आज पश्चिमी देशों का ही अध्ययन नहीं होता है, वरन् साम्यवादी तथा संस्कृतियों की ओर भी उन्मुख हुआ है जिसने इसे अधिक लाभ पहुँचाया है और लोक प्रशासन के क्षितिज का विस्तार किया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशिया एवं अफ्रीका में नवोदित राष्ट्रों के उदय के साथ ही लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में अभिरूचि विकसित हुई। तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसका उद्देश्य लोक प्रशासन के अध्ययन को संकीर्णता के दायरे से निकालकर व्यापक आधारभूमि पर ला खड़ा करना है। लोकतांत्रिक देशों की प्रशासन व्यवस्था के साथ साथ निरंकुश देशों में प्रशासन व्यवस्था, पश्चिमी देशों और विकासशील देशों की प्रशासन व्यवस्था, पूँजीवादी देशों तथा साम्यवादी देशों की प्रशासनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के माध्यम से उन प्राक्कलनों, सामान्यीकरण, प्रतिमानों व सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है जो सामूहिक रूप से लोक प्रशासन के वैज्ञानिक अध्ययन में सहायता कर सकते हैं।

विकास प्रशासन की संकल्पना का प्रयोग केवल एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका जैसे विकासशील

राष्ट्रों के संदर्भ में किया गया है। अतः प्रत्यक्ष राज्य के रूप में विकास प्रशासन का विचार गैर औपनिवेशिकता के दौरान सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में दखल देने के लिए पैदा हुआ। विकास प्रशासन की संकल्पना को सुसज्जित एवं साकार रूप प्रदान करने का कार्य पश्चिमी देशों विशेषतः अमेरिका के विद्वानों द्वारा किया गया था। तीसरी दुनिया का विकास पचास के दशक की अमेरिकी सामाजिक विज्ञान की विचारधारा में शक्तिशाली हुआ। दो विकासात्मक लक्ष्य, राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक विकास, विकास प्रशासन के मूल तथ्यों का निर्माण करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में उपर्युक्त धारणा में व्यापक परिवर्तन आया जिसके सम्बन्ध में इजमैन (Esman) ने टिप्पणी करते हुए कहा कि एक नए वातावरण का उदय हुआ है जोकि विकास प्रशासन की मूल मान्यताओं का ही खण्डन करता है। इस परिवर्तन के मूल में विकासशील देशों में समाजवाद का ह्रास, विशालकाय राज्य की असफलता, निजीकरण, जन सहभागिता और उदारवाद के विस्तार तथा औपचारिक उपकरणों की भूमिका विद्यमान रही है। परिणामतया नवीन विकास प्रशासन (New Development Administration) का उदय हुआ जिसके मौलिक सिद्धान्तों में विकेन्द्रीकरण, जन सहभागिता, सीमित सरकार, विकास के वैकल्पिक नमूने और संवृद्धिवाद (incrementatlism) आदि शामिल थे।

नवीन लोक प्रशासन ने इस महत्त्वपूर्ण बात पर बल दिया है कि लोक प्रशासन को सीधे समाज से जुड़ा होना चाहिए। नवीन लोक प्रशासन विशुद्ध रूप से एक अमेरिकी धारणा है। लोक प्रशासन के शास्त्रीय मूल्य दक्षता, मितव्ययता, उत्पादकता एवं केन्द्रीकरण रहे हैं। नवीन लोक प्रशासन मूल्यों के एक नये सैट को प्रश्रय देता है। वह मानववाद, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, बहुवाद, व्यक्तिगत वृद्धि, वैयक्तिक गरिमा आदि का पक्षपोषण करता है। वह इस मत को अस्वीकार करता है कि प्रशासन मूल्यों के प्रति तटस्थ होता है। वह नागरिक सहभागिता और सड़कछाप अधिकारीतन्त्र पर प्रतिवेष नियंत्रण का पक्षपोषण करता है। वह नौकरशाही के प्रति उत्तरदायित्व का समर्थन करता है।

नवीन लोक प्रशासन के प्रमुख आराध्य चार हैं : मूल्य (values), सामाजिक न्याय (Social Equity), प्रासंगिकता (relevance) तथा परिवर्तन (change)। प्राचीन शास्त्रीय मूल्यों एवं नवीन प्रेरणाओं के मध्य विनिमय होना ही चाहिए। एच0 जार्ज फ्रेडरिकसन ने ठीक ही कहा है कि उत्पादकता, दक्षता एवं मितव्ययता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। किन्तु वह निश्चयपूर्वक कहता है कि ''सर्वाधिक उत्पादक शासन अब भी निर्धनता, अवसर की असमानता एवं अन्याय को कायम रख सकता है। शास्त्रीय अधिकारी तन्त्र का प्रारूप और नवीन अधिकारी तन्त्र का प्रारूप (हर्बर्ट साइमन का, जो निर्णय करने पर केन्द्रित है) दोनों में इन प्रवृत्तियों की क्षतिपूर्ति के उपाय नहीं हैं। अतएव आधुनिक लोक प्रशासन को ऐसे सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों की खोज करनी चाहिए जो विन्सेण्ट ऑस्ट्रम द्वारा बताये गये 'लोकतांत्रिक प्रशासन' के अनुरूप हों।'' इसलिए जे0 राल्स द्वारा कहा गया 'मतपेटिका से परे लोकतंत्र' लोक प्रशासन के विशेषतः उसके मूल्यों के निर्धारण में भारी पुनर्गठन को आवश्यक बनाता है।

भारत में अभी नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धी धारणाओं का प्रसार नहीं हुआ है। क्योंकि यहाँ वे परिस्थितियाँ नहीं पायी जाती हैं जिनके फलस्वरूप नवीन लोक प्रशासन की धारणा का अमरीका में विकास हुआ। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन विषय की भारत में अभी जड़ें गहरी नहीं हैं। धन का भी पर्याप्त अभाव है और न ही संकाय की स्थापना हुई है। परन्तु थोड़े से लेखक ही उसकी और अवश्य आकर्षित हुए हैं। लोक प्रशासन की भारत में प्रकृति संचयी (deriavative) है। यहाँ की राजनीतिक संस्कृति में नवीन लोक प्रशासन अपना स्थान नहीं बना पाया है। भारत में लोक प्रशासन के समक्ष मुख्य चुनौती यह है कि उसे देश की ऐतिहासिक, संस्थागत एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप होना चाहिए। देश के वातावरण से लोक प्रशासन को जीवन एवं शक्ति अर्जित करने सम्बन्धी और उपयुक्त मतदान प्रणाली का विकास करना चाहिए।

छठा चरण (1990 से अब तक) यह चरण मुख्यतया नवीन लोक प्रबन्ध के प्रबल विकास से सम्बन्धित है परन्तु इसमें उन सिद्धान्तों तथा आयामों का वर्णन भी शामिल है जिन्होंने नवीन लोक प्रबन्ध के विकास को आधारशिला प्रदान की और इनमें नये मुख्यतया लोक चयन विकल्प सिद्धान्त (Public Choice Theory) शामिल है।

श्री राम महेश्वरी ने भी लोक प्रशासन विषय के विकास को छह चरणों में बाँटा है जिसमें प्रथम चरण, 1887–1926, द्वितीय चरण, 1927–1937, तृतीय चरण, 1938–1947, चतुर्थ चरण, 1948–1970, पंचम चरण, 1971–1990, षष्ठ चरण, 1990 से अब तक शामिल है।

5. नवीन लोक प्रशासन

(The New Public Administration)

1960–1970 के दशक में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा राजनीतिशास्त्र की भांति लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी नए विचार उदय हुए। पुरातन सिद्धान्तों पर आधारित लोक प्रशासन के मुख्य उद्देश्यों कुशलता एवं मिव्ययता को अनुचित एवं अपर्याप्त समझा जाने लगा और इनके स्थान पर मूल्यों पर बल दिया जाने लगा। क्योंकि सभी गतिविधियों का केन्द्र मनुष्य है, इसलिए सकारात्मक उद्देश्यों को समक्ष रखते हुए लोक प्रशासन को मूल्योन्मुख होना चाहिए। ये विचार इतने क्रान्तिकारी थे कि इन्होंने लोक प्रशासन के स्वरूप को ही बदल दिया। इस नवीन विचारधारा को नवीन लोक प्रशासन का नाम दिया गया। नवीन लोक प्रशासन 60 के समय में अमेरिका में बुद्धिजीवी हलचल, सामाजिक तथा राजनैतिक उथल–पुथल का परिणाम है जिस समय लोक प्रशासन के समक्ष नई चुनौतियां आई और यह सामाजिक संकट, आर्थिक समस्याओं तथा पर्यावरण से सम्बन्धित खतरों आदि को समझने में असफल रहा। इन समस्याओं के मध्यनजर, लोक प्रशासन के युवा विद्वानों ने इसे चुनौती दे डालीं इस प्रक्रिया में उन्होंने इन समस्याओं का समाधान करने के लिए नए विचार और पहलपन (initiatives) को तलाश करने का प्रयत्न किया।

नवीन लोक प्रशासन का अर्थ (Meaning of New Public Administration)

नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा का प्रयोग लोक प्रशासन के नए दार्शनिक दृष्टिकोण का वर्णन करने के लिए किया गया है जिसमें सभी प्रशासकीय क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु 'व्यक्ति' को माना गया है। व्यक्ति को कुशलता के यान्त्रिक प्रयोग का विषय नहीं बनाया जा सकता इसलिए प्रशासन को मानव उन्मुख होना चाहिए और इसकी पद्धति मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए।

नवीन लोक प्रशासन युवा विद्वानों द्वारा प्रेरित एक आन्दोलन है जिसमें शोध और क्रियात्मक प्रशासन में मूल्य तटस्थता को चुनौती दी गई है और समाज की उभरती हुई समस्याओं पर ध्यान देने की जरूरत जताई गई है।

इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन का जोर (1) प्रशासन की बजाय पब्लिक पर है, (2) सिद्धान्त और प्रक्रिया की बजाय प्रभावशीलता पर है। (3) यह लोक प्रशासन को समाज के निकट लाने का प्रयत्न करता है जबकि दूसरी ओर रूढ़िवादी प्रशासन का जोर (i) शासन पर है न कि जनता पर (ii) सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं पर है न कि मूल्यों पर (iii) कुशलता तथा मितव्यता पर है न कि प्रभावशीलता और सेवा पर।

नीग्रो और नीग्रो के अनुसार नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता तथा सामाजिक मूल्यों के सिद्धान्त पर बल देता है ताकि समाज के हितों की पूर्ति की जा सके।

नवीन लोक प्रशासन को एक प्रकार से उत्तर व्यवहारवाद, उत्तर निश्चयात्मक (Post Positivist) अस्तित्वाद, अन्त–अनुशासन, सामाजिक समता, लोकनीति आधारित पद्धति का द्योतक माना जाता है।

नवीन लोक प्रशासन का विकास (Evolution of New Public Administration)

तकनीकी रूप से नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 से मानी जाती है जिसे डवाइट वाल्डो, फ्रैंक मैरिनी और फ्रैडरिक्सन का उत्साह तथा निर्देशन प्राप्त था। इसलिए इन्हें नव लोक प्रशासन की तीन मूर्ति माना जाता है।

इसकी विकास प्रक्रिया को निम्न रूप से वर्णित किया जा सकता है।

1. सार्वजनिक सेवाओं सम्बन्धी उच्च शिक्षा पर हनी (Honey) प्रतिवेदन, 1967
2. लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन, 1967
3. प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968
4. (a) फ्रैंक मेरिनी द्वारा सम्पादित टवर्डज ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : द मिन्नोब्रुक पर्सपैक्टिव, 1971

   (b) डवाइट वाल्डो द्वारा सम्पादित पब्लिक एडमिनिस्ट्रैशनः इन ए टाइम ऑफ ट्रबुलेंस, 1971

   (c) फ्रैडरिक्सन द्वारा रचित टूवर्डज ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1980
5. द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988

1. सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन–1967 (The Honey Report on Higher Education for Public Service 1967)

1966 में लोक प्रशासन की अमेरिकन संस्था (American Society for Public Administration) ने Syracuse University के जॉन सी0 हनी (John C. Honey) को अमेरिका के विश्वविद्यालयो में लोक प्रशासन के स्वतंत्र विषय के रूप में अध्ययन मूल्यांकन के लिए कहा। जॉन ने अपना प्रतिवेदन 1967 में पेश किया। इसमें उन्होंने लोक प्रशासन की वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हुए लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करने के लिए इसे समस्त प्रशासकीय प्रक्रिया अथवा समस्त सरकार के क्रियाकलापों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। उसके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका सम्मिलित हैं। हनी के अनुसार लोक प्रशासन विषय के क्षेत्र को व्यापक बनाने के मार्ग में चार समस्याएँ है :– (i) विषय से सम्बन्धित साधनों (विद्यार्थी, अध्यापक तथा अनुसंधान राशि) की कमी। (ii) विषय के स्तर के बारे में मतभेद, कि क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है या एक व्यवसाय। (iii) संस्थागत दुर्बलता जिसमें लोक प्रशासन के विभागों का कम होना, तथा (iv) लोक प्रशासन के विद्वानों तथा व्यावहारिक प्रशासकों में अन्तः प्रक्रिया का अभाव।

हनी अपने प्रतिवेदन में लोक प्रशासन की इन समस्याओं को दूर करने के लिए कई सुझाव दिए, :– (i) लोक सेवा शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाए (ii) लोक सेवा में मास्टर तथा डॉक्टरेट स्तर पर स्नातकोत्तर को छात्रवृत्तियां देने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। साथ ही स्नातकोत्तर तथा उग्रवर्ती पूर्वस्नातक (Advanced Undergraduates) छात्रों के लिए संघीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण की सुविधा का प्रबन्ध किया जाए। (iii) लोक प्रशासन एवं सार्वजनिक मामलों में अध्यापक बनने की योजना बनाने वालो को शिक्षावृत्तियां (Fellowship) देने का विशेष कार्यक्रम बनाया जाए। (iv) सार्वजनिक मामलों में प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के लिए विश्वविद्यालयों को अनुदान दिया जाए तथा अध्यापकों के अनुभव हेतू कार्यक्रम बनाया जाए। (v) संघीय, राज्य, स्थानीय सरकारों तथा निजी उद्योगों द्वारा सहायता दी जाए तथा एक परामर्शदात्री सेवा शुरू हो ताकि छात्रों को

नवीन सूचनाएं सरलता से मिल सकें। (vi) लोक सेवा से सम्बन्धित प्रशिक्षण तथा शिक्षा की दृष्टि से समय समय पर विश्वविद्यालयों की समीक्षा की जाए (vii) व्यवसायों, व्यवसायिक शिक्षा तथा सार्वजनिक सेवाओं का अध्ययन किया जाए।

हनी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट अमेरिका में चर्चा का विषय बन गई। इसने लोक प्रशासन के कई विद्वानों को गम्भीरता से विचार करने के लिए प्रेरित किया। अतः हनी प्रतिवेदन को नवीन लोक प्रशासन की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है।

2. लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन (Conference on the Theory and Practice of Public Administration, 1967)

लोक प्रशासन के क्षेत्र में तेजी से होने वाली गतिविधियों को अनुभव करते हुए दिसम्बर 1967 में अमेरिकन एकैडमी ऑफ पोलिटिकल एंड सोशल साईंस ने फिलाडेल्फिया में एक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, क्षेत्र, उद्देश्य तथा अध्ययन पद्धति पर विचार करना था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता जेम्स सी0 चार्ल्सवर्थ ने की।

इस सम्मेलन में विद्वानों ने भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किए परन्तु काफी मतभेद होने के बावजूद भी इसके सदस्य कुछ बातों पर एकमत थे जैसे :–

(i) लोक प्रशासन के क्षेत्र का स्पष्टीकरण इतना ही कठिन है जितना कि इसकी परिभाषा करना। (ii) लोक प्रशासन के अधिकारियों का मुख्य कार्य नीति निर्माण है, इसलिए नीति प्रशासन द्वैतभाव (Dichotomy) अनुचित है। (iii) नौकरशाही का अध्ययन क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनों रूपों में हो। (iv) लोक प्रशासन तथा वाणिज्य प्रशासन दोनों कुछ महत्त्वहीन क्षेत्रों में एक जैसे हैं, इसलिए दोनों का प्रशिक्षण समान होना नहीं चाहिए। (v) लोक प्रशासन को व्यवसाय के रूप में राजनीति शास्त्र के अनुशासन तथा व्यवसाय से अलग रखना चाहिए। (vi) आदर्श प्रशासकीय सिद्धान्त तथा लोक प्रशासन के वर्णित–विश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Descriptive-analytic Theory) अस्तव्यस्तता (Disarray) की स्थिति में है। (vii) संगठनात्मक सत्ता की पद्क्रम की विचारधारा के स्थान पर सह कार्यकर्त्ता (Co-ordinates) की विचारधारा (viii) लोक प्रशासन में प्रबन्ध कौशल (Management Ability) का स्थान नीति और राजनीतिक विचार ले रहे हैं। (ix) भावी प्रशासकों को व्यावसायिक शिक्षा केन्द्रों में प्रशिक्षण के साथ मनोवैज्ञानिक, वित्तीय, समाजशास्त्रीय तथा मानवशास्त्रीय अध्ययनों को भी सम्मिलित करना चाहिए। (x) लोक प्रशासन विकासशील देशों आदि की समस्याओं के बारे में मौन है।'' चार्ल्सवर्थ के अनुसार, ''हम वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग तभी कर सकते हें यदि हम अपने विषय के क्षेत्र को बहुत सीमित कर लें परन्तु यदि हम ऐसा करते हैं तो क्या हम इसके बहुत से महत्त्वपूर्ण भागों को अलग नहीं कर देते और हम कुछ क्षेत्रों में विज्ञान का प्रयोग कर सकते हैं। लोक प्रशासन का तो मूल्यों और प्रथाओं से सम्बन्ध है जिन्हें वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता।''

फिलाडेल्फिया सम्मेलन के निर्णयों का मिन्नोबुक सम्मेलन में समर्थन किया गया, इसीलिए इसे मिन्नोब्रुक सम्मेलन का पथ प्रदर्शक भी माना जाता है।

प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन–1968 (First Minnowbrook Confrence, 1968)

नवीन लोक प्रशासन की उत्पत्ति का मुख्य श्रेय प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन को जाता है। यह सम्मेलन 1968 में डवाइट वाल्डो के निमन्त्रण पर हुआ। इस सम्मेलन में 50 राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मुख्यतः इन बातों पर विचार किया गया :– (i) क्या लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तथा समाज में प्रशासन की क्या भूमिका होनी चाहिए ? (ii) उसे पूरी तरह मूल्य–निरपेक्ष या मूल्योन्मुख

होना चाहिए। (iii) इस बात पर भी विचार किया गया कि यदि प्रशासक किसी नीति, विचार या मूल्य के प्रतिबद्ध हों तो वे क्या करें ?

इन सभी पक्षों पर विचार करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला गया कि (i) लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं और तेजी से होते हुए परिवर्तनों के प्रति जागरूक होना चाहिए। (ii) लोक प्रशासन को मूल्यहीन एवं मूल्य मुक्त नहीं होना चाहिए बल्कि मूल्योन्मुख होना चाहिए। (iii) इसका नैतिकता, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय में विश्वास होना चाहिए तथा समाज के पिछड़े तथा दलित वर्ग के उत्थान के लिए प्रयत्नशील हो। (iv) लोक प्रशासन को परिवर्तन के सक्रिय प्रतिनिधि के रूप में सामने आना चाहिए। (v) इसे सामाजिक चुनौतियों का सामना करना चाहिए। (vi) प्रशासन में तेजी से बदलते हुए वातावरण के अनुरूप संगठन के नए रूप का विकास किया जाना चाहिए।

अतः प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन के अनुसार नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए उत्तरदायी है और इसके मुख्य तत्त्व हैं, प्रासंगिकता (Relevance), सदाचरण (Morals), नैतिकता एवं मूल्य (Ethics and Values), सामाजिक न्याय (Social Equity), सेवित लोक सकेन्द्र (Client Focus) आदि। मिन्नोब्रुक सम्मेलन द्वारा ही लोक प्रशासन को नवीन छवि प्रदान की गई है। लोक प्रशासन ने इस सम्मेलन के बाद ही सुधारवादी प्रवृत्ति को अंगीकार किया है।

डवाइट वाल्डो ने अपनी पुस्तक 'इन्टरपराईज ऑफ पब्लि एडमिनिस्ट्रेशन 1980 में कहा कि नवीन लोक प्रशासन में तीन पहलुओं को उजागर किया गया (i) सेवित लोक उन्मुख (Client based) (ii) प्रतिनिधि नौकरशाही (iii) जनता की भागीदारी। यदि तीनों पहलुओं का लोक प्रशासन में समावेश कर दे तो इसका प्रजातान्त्रिकरण हो सकता है।

नवीन लोक प्रशासन के उद्देश्य (Goals of New Public Administration)

1. प्रासंगकिता (Relevance) 2. मूल्य (Values) 3. सामाजिक समता (Social Equity) 4. परिवर्तन (Change)

1. प्रासंगिकता (Relevance)

(i) प्रशासन का ध्यान तत्कालीन समस्याओं पर होना चाहिए न कि मितव्यता और कुशलता पर। (ii) लोक प्रशासन को नीति उन्मुख होना चाहिए। (iii) सभी प्रशासकीय कार्यों के राजनैतिक और आदर्श सदंर्भों पर विचार विमर्श होना चाहिए। (iv) लोक प्रशासन को निरीक्षण का कठिन (sophisticated) यन्त्र होने की बजाय सामाजिक समस्याओं के प्रति प्रासंगिक एवं अर्थपूर्ण होना चाहिए। (v) सामाजिक जीवन में सुधार लाने के लिए प्रासंगिक शोध की जरूरत है।

2. मूल्य (Values)

(i) प्रशासकीय अध्ययनों में मूल्य तटस्थ सामाजिक विज्ञान की बजाय आदर्शक (normative) संदर्भ होना चाहिए। (ii) लोक प्रशासन का अधिक ध्यान न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, मानवता, नैतिकता आदि मूल्यों पर होना चाहिए। (iii) प्रशासकों को प्रशासकीय व्यवस्था के उद्देश्यों के प्रति निजी रूप से प्रतिबद्ध होना चाहिए।

3. सामाजिक समता (Social Equity)

(i) सामाजिक समता मानव विकास को निर्देशित करने का सामान्य वाहन है। (ii) प्रशासकों को समाज के पिछड़े वर्गों का चैम्पियन होना चाहिए। (iii) लोक प्रशासन का मुख्य सम्बन्ध वितरित–न्याय तथा समता के उद्देश्य से होना चाहिए और इसके लिए जनता की भागीदारी का होना आवश्यक है। (iv) पिछड़े वर्गों को प्राथमिकता दी जाए। (v) कल्याणकारी राज्य की बजाए सामाजिक सेवा राज्य की आवश्यकता है।

4. परिवर्तन (Change)

(i) आविष्कार और परिवर्तन पर जोर देना चाहिए। इसके लिए प्रशासकीय मशीनरी में सम्भावित परिवर्तन किया जाए। (ii) लोक प्रशासन में यथास्थिति की बजाए नए विचारों को शामिल किया जाए। (iii) परिस्थिति में परिवर्तन के साथ लोक प्रशासन की पुनः स्थापना, नवीनीकरण और सशक्तीकरण (recreated, renewed and revitalized) की जाए ताकि परिवर्तनशील समाज के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। (iv) निष्क्रय और पुराने प्रशासकीय ढांचों, व्यवस्था तथा प्रथाओं की जगह नए ढांचों तथा व्यवस्था की जरूरत है।

नीग्रो एण्ड नीग्रो ने नव लोक प्रशासन के दो सिद्धान्त बताये हैं :– (i) सामाजिक समता (ii) सेवा निर्वहन।

रॉबर्ट टी0 गोलम्व्यूसकी ने नवीन लो प्रशासन के तीन विरोधी लक्ष्य (Anti Goals) बताये हैं :– (i) नवीन लोक प्रशासन का साहित्य Anti Positivist है अर्थात् यह मूल्य निरपेक्ष लोक प्रशासन, तार्किकता तथा नीति से विहीन लोक प्रशासन की परिभाषा को नहीं स्वीकारता है। (ii) यह तकनीक विरोधी है अर्थात् भावनात्मक सृजनात्मक मानवता का बलिदान नहीं चाहता है। (iii) यह न्यूनाधिक मात्रा में नौकरशाही तथा पदसोपान का विरोधी है।

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ (Characteristics of New Public Administration)

(i) राजनीति तथा प्रशासन के मध्य द्विविभाजन नहीं : पॉल एच0 एपलबी मानते हैं कि राजनीति तथा प्रशासन को अलग अलग बिन्दु मानने पर लोक प्रशासन की सर्वस्वीकार्यता तो कम होगी ही साथ ही साथ लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा भी ध्वस्त हो जाएगी। अतः इन दोनों के मध्य विभाजन अव्यवहारिक, अप्रासंगिक तथा अवास्तविक है। इसी प्रकार रॉबर्ट टी0 गोलम्व्यूस्की कहते हैं प्रशासन महत्त्वपूर्ण कार्यों में राजनीति को परिवर्तित कर सकता है न कि राजनीति प्रशासन को। अतः लोक प्रशासन तथा राजनीति में द्विविभाजन नहीं होना चाहिए जबकि लोक प्रशासन की परम्परागत विचारधारा दोनों के मध्य विभाजन करती थी

(ii) मानवीय दृष्टिकोण का समर्थक : परम्परागत लोक प्रशासन में मनुष्य को ''आर्थिक जीव'' के रूप में मानते हुए उत्पादन का यंत्र स्वीकारा गया था जबकि नवीन लोक प्रशासन मं मानवीय सम्बन्धों, संवेदनाओं तथा समस्याओं को महत्त्वपूर्ण माना गया है तथा लोक प्रशासन को कार्योन्मुख होने के बजाय मानवोन्मुख बनाने पर बल दिया गया है।

(iii) सामाजिक परिवर्तन का द्योतक : नवीन लोक प्रशासन के समर्थक चाहते हैं कि सामाजिक न्याय तथा समानता के अनुरूप उपागम अपनाये जाएँ ताकि लोक प्रशासन, समाज के निर्धन तथा दलित वर्ग का उत्थान कर सकें। इसी मान्यता के द्वारा लोक प्रशासन, सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्ता बन सकता है।

(iv) नवीनता तथा लोचशीलता पर बल : नवीन लोक प्रशासन के समर्थक इसे एक प्रगतिशील विज्ञान बनाना चाहते हैं ताकि शीघ्र परिवर्तित वातावरण के अनुरूप यह अपने आपको ढाल सकें। दृढ़ता तथा यथास्थितिवाद का विरोध करते हुए नवीनता तथा लोचशीलता पर बल देना इसकी विशेषता है।

(v) ग्राहक केन्द्रित प्रशासन पर बल : यह व्यक्ति की भावनाओं तथा आवश्यकताओं को केन्द्र बिन्दु बनाने पर जोर देता है। नीग्रो एवं नीग्रो के अनुसार ''सार्वजनिक सेवाओं का अधिकाधिक प्रभावशाली तथा मानवीय वितरण उसी स्थिति में सार्थक सिद्ध हो सकता है जबकि ग्राहक केन्द्रित प्रशासन के साथ, लोक प्रशासन में नौकरशाही को दूर किया जाए।''

(vi) सामाजिक कार्य कुशलता तथा प्रभावशीलता पर बल : नवीन लोक प्रशासन के समर्थक सामाजिक कार्य कुशलता तथा प्रभावशीलता पर बल देते हैं। समाजशास्त्री उसी सरकार को श्रेष्ठ मानते हैं जो सामाजिक संवेदनाओं को समझती हो, जन समस्याओं तथा आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो।

(vii) विकेन्द्रीकरण और प्रत्यायोजन पर बल : नवीन लोक प्रशासन जन सहभागिता का समर्थन करते हुए नौकरशाही के उत्तरदायित्व एवं प्रतिबद्धता को भी रेखांकित करता है। यह लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया का समर्थन करता है।

द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन–1988 (Second Minnowbrook Conference, 1988)

प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 के बीस वर्ष पश्चात् 1988 में उसी स्थान पर दूसरा मिन्नोब्रुक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य (i) 1960 के दशक में किए गए निर्णयों पर पुनः विचार करना, (ii) पिछले बीस वर्षों में लोक प्रशासन के क्षेत्र में हुई प्रगति का विश्लेषण करना तथा (iii) आगे लोक प्रशासन का विधिक्रम क्या है के बारे में विचार करना था। फैड्रिकसन के अनुसार द्वितीय सम्मेलन के समय में लोक प्रशासन की भूमिका में मूलभूत परिवर्तन आ चुके थे जिसमें विकेन्द्रीयकरण (Decentralization), अधिकारान्तरण (Devolution), परियोजनाएँ (Projects), संविदा (Contract), सचेतना (Sensitivity), प्रशिक्षण (Training), संगठन (Organization), विकास (Development), उत्तरदायित्व का विस्तार (Responsibility Extension), सम्मुखीकरण (Confrontation) तथा सेवित लोक की सहभागिता (Client Involvement), आदि पर बल दिया जाने लगा जो नौकरशाही के विरूद्ध थी। इन धारणाओं का निर्माण नौकरशाही तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया में परिवर्तन अथवा संशोधन को बढ़ाने के लिए किया गया है ताकि इससे सामाजिक न्याय की संभावना में वृद्धि हो सके।

प्रथम एवं द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलनों में अन्तर (Diffeence between 1st and 2nd Conferences)

	प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन (1968)	द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन (1988)
(i)	इस सम्मेलन के अधिकांश सहयोगी युवा राजनैतिक विद्वान थे।	इस सम्मेलन का अकादमिक दायरा विस्तृत था जिसमें विधिवेता अर्थाशास्त्री, नीति एवं नियोजन विश्लेषक तथा नगरीय अध्ययनकर्त्ता इत्यादि भी सम्मिलित थे।
(ii)	यह सम्मेलन अमेरिकी सामाजिक, आर्थिक उथल पुथल के दौरान आयोजित हुआ था।	यह सम्मेलन विश्वव्यापी आर्थिक सुधारों के दौरान आयोजित हुआ।
(iii)	इस सम्मेलन की वैचारिक पृष्ठभूमि क्रांतिकारी, अधीर, टकरावयुक्त तथा अति उत्साह से भरपूर थी।	इस सम्मेलन की वैचारिक पृष्ठभूमि सुविचारित धैर्ययुक्त परिपक्व, व्यावहारिक तथा व्यापक सोच से युक्त थी।
(iv)	इसमें प्रासंगिकता, मूल्यों, सामाजिक समता तथा परिवर्तन पर बल दिया गया था।	इसमें संवैधानिक तथा कानूनी परिप्रेक्ष्य में नेतृत्व, प्रौद्योगिकी, नीति तथ आर्थिक परिवेश पर जोर दिया गया था।
(v)	यह सम्मेलन व्यवहारवादियों की सहभागिता से वंचित रखा गया था।	यह सम्मेलन लोक प्रशासन में सामाजिक तथा व्यावहारिक विज्ञानों के योगदान को प्रोत्साहित करता है।
(vi)	इस सम्मेलन के आयोजकों ने कहा कि सरकार प्रमुख सामाजिक मुद्दों पर तत्काल पहल करके कार्यवाही करे।	इस सम्मेलन के समय सरकार तथा राज्य की घटती भूमिका, निजीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण के विचार समाने आ चुके थे जो सरकार से सीमित किन्तु प्रभावी भूमिका चाहते थे।

6. नव लोक प्रबन्धन

(New Public Management)

लोक प्रशासन के साहित्य में नव लोक प्रबन्ध (NPM) की अवधारणा की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ रही है जिसे प्रौद्योगिकी सरकार, प्रबन्धवाद, बाजार आधारित लोक प्रशासन, पुनः अन्वेषित सरकार, नव उदारवाद आदि के नाम से भी पुकारा जाता है। यह सिद्धान्त लोक प्रशासन के परम्परागत प्रतिमान से हटकर 20वीं सदी के प्रबन्धवाद पर बल देता है। इसमें लोक प्रशासन के केन्द्र बिन्दु को संस्थाकरण से नीति निर्माण पर और साधनों की बजाय उद्देश्यों पर ले जाया गया है। नव लोक प्रबन्ध के कट्टर समर्थकों में डैविड ऑसबोर्न और टैड गैबलर का नाम आता है। यह लोक चयन विकल्प सिद्धान्त पर टिका हुआ है। एन0पी0एम0 80 तथा 90 के दशकों में विभिन्न देशों में हुए सुधारों का वर्णन करता है। यह मुख्यतः निम्न बातों पर जोर देता है :–

(i) परम्परागत ढाँचे की जगह बाजार पर आधारित लचीली लोक प्रबन्ध की व्यवस्था को अपनाया जाए।

(ii) मात्र रूप और शैली में ही परिवर्तन नहीं बल्कि समाज के प्रति भी सरकार की भूमिका में भी बदलाव लाया जाए तथा वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों के चलते सार्वजनिक क्षेत्र के विश्लेषण में नए उपकरणों को प्रयोग में लाया जाए।

गौरे (Gore) के अनुसार एन0पी0एम0 राजनीति की निष्पादन समीक्षा नहीं करता बल्कि सरकार की कार्य प्रक्रिया में सुधार लाने की बात करता है चाहे कोई भी दल सत्ता में हो। एन0पी0एम0 वर्तमान राजनैतिक सिद्धान्त का प्रतिबिम्बन है जिसमें सार्वजनिक हित विश्व बाजार मांगों के बन्धक (Hostage) बन कर रह गए हैं। यह आर्दशात्क अनुभवात्मक (Normative-empirical) की सीमा के अन्तर को नहीं मानता। एन0पी0एम0 शब्द का प्रयोग क्रिस्टोफर हुड (Chrestopher Hood) ने अपने शोधपत्र 'ए पब्लिक मैनेजमैंट फॉर आल 'सीजन्स' में किया। इसके अतिरिक्त गेराल्ड केडन (Gerald Caiden), सी पोलिट (C. Pollit), आर0एम0 कैली (R.M. Kelly) आदि ने भी एन0पी0एम0 के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

नव लोक प्रबन्ध में 'कैसे' (How) प्रश्न को व्यावसायिक प्रबन्ध से लिया है और इसे लोक प्रशासन के 'क्या' (What) प्रश्न से जोड़ दिया है। यह उस सरकार को श्रेष्ठ मानता है जो कम से कम शासन करे। इस प्रकार यह राज्य के ऊपर बाजार के वर्चस्व की बात करता है और लोक नौकरशाही के सिकुड़ जाने से जो रिक्तता पैदा होगी उसे बाजार द्वारा भरा जाएगा।

सार्वजनिक क्षेत्र के आकार तथा योग्यता पर प्रश्नचिह्न 80 के दशक के प्रारम्भ में लगाए जाने लगे जिसके तीन कारण थे– (i) इसका आकार बड़ा होने के कारण सीमित संसाधनों का अपव्यय (ii) सरकार ही सभी लोक सेवाएँ प्रदान करती हैं जबकि कुछ को निजी क्षेत्र को सौंपा जा सकता है। (iii) सरकार की कार्यपद्धति की कड़ी आलोचना की गई। इनके अतिरिक्त नौकरशाही को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का घातक माना गया और इसकी रूढ़िवादी विशेषताओं को प्रजातन्त्र के मार्ग में बाधा माना गया। राजनैतिक तटस्थता के कारण प्रशासकों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

वास्तव में थेचर और रीगन के शासन काल में एन0पी0एम0 को असफल बाजारों के लिए कुशलता औषधि के रूप में पेश किया गया। रोडस (Rhodes) के अनुसार प्रारम्भ में इसके दो अर्थ निकाले गए (i) व्यावसायिक प्रबन्ध (Corporate management) (ii) बाजारीकरण (marketisation)। 'बर्लिन की दीवार' के गिराने के बाद एन0पी0एम0 को काफी प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त इंग्लैंड, न्यूजीलैंड और अमेरिका में काफी पुस्तकें लिखी गईं जिनमें

नौकरशाही प्रतिमान को अकुशल और निकम्मा करार दिया गया और सरकार की भूमिका को पुनः तलाश (Re-inventing the Government) करने पर बल दिया गया।

नव लोक प्रबन्ध के तत्त्व (Elements of NPM)

Organisation for Economic Cooperation and Development (O.E.C.D.) आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन के अनुसार (i) मानव संसाधन में सुधार (ii) निर्णय प्रक्रिया में कर्मचारियों की भागीदारी (iii) निष्पादन लक्ष्यों की स्थापना (iv) सूचना तकनीक का प्रयोग (v) मुवक्किल (Client) सेवा (vi) प्रयोगकर्त्ता से सेवा की अदायगी (vii) संविदा प्रणाली (viii) एकाधिकार का विनियमन आदि।

मैसी (Massey) के अनुसार (i) राज्य की भूमिका में कमी करके निजी क्षेत्र की भूमिका में बढ़ोत्तरी (ii) प्रशासनिक कार्यप्रणाली में प्रौद्योगिकी गुणों व क्रियाओं को अपनाने पर बल (iii) नौकरशाही के बढ़ते आकार को रोकना (iv) आर्थिक नीतियों तथा निर्णयों का अराजनैतिकरण करके व्यवसायिक विशेषज्ञों को यह दायित्व सौंपना। (v) नागरिक स्वतन्त्रता की रक्षा।

क्रिस्टोफर हुड के अनुसार (i) सार्वजनिक क्षेत्र में व्यावसायिक प्रबन्ध पर बल देना। (ii) निजी क्षेत्र प्रबन्ध शेली का अनुसरण। (iii) प्रतिस्पर्धा की ओर गमन, जिससे अभिप्रेरणा, लागत कम करने व सेवा तथा उत्पाद का स्तर बढ़ाने में सहायता मिलेगी। (iv) मानक स्थापित करने, कार्य मापन और लक्ष्य निर्धारण पर बल। (v) निर्गत नियंत्रणों पर विशेष चिंता, जो संसाधन बंटवारे से संयोजित होंगे। (vi) संसाधनों के प्रयोग में कुशलता एवं मितव्ययता। (vii) पहले की विशालकाय इकाइयों को उत्पादक प्रकार्यों में विभक्त करना तथा ठेका व्यवस्था लागू करना।

इस प्रकार नव लोक प्रबन्ध में :– (i) प्रौद्योगिकी पर बल (ii) निष्पादन के मापतोल के स्पष्ट मानक (iii) उत्पादन नियन्त्रण पर जोर (iv) जनसेवाओं का विकेन्द्रीकरण (v) जनसेवाओं में प्रतियोगिता (vi) निजी क्षेत्र प्रबन्ध तकनीकों पर बल (vii) संसाधन आबंटन में कड़े अनुशासन की बात कही गई है।

डेविड ऑसबोर्न एवं टैड गैबलर (David Osborne and Ted Gaebler) की पुस्तक, रीइन्वेटिंग गवर्नमेंट : हाउ द इन्टरप्रेन्योरल स्पिरिट इज ट्रान्सफार्मिंग द पब्लिक सेक्टर' में नव लोक प्रबन्ध के व्यापक सिद्धान्तों द्वारा सरकार का रूपांकन करने के लिए जो सिद्धान्त मार्गदर्शक बन सकते हैं जो इस प्रकार हैं :–

(i) उत्प्रेरक सरकार जो स्वयं नाव न चलाए केवल दिशानिर्देश दे। (ii) समुदाय के स्वामित्व की सरकार जो सेवा के स्थान पर शक्ति प्रदान करने में विश्वास करे। (iii) प्रतियोगितात्मक सरकार जो सेवा प्रदान करने में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दे। (iv) लक्ष्योन्मुख सरकार जो नियम संचालित संगठनों को परिवर्तित करे। (v) परिणाम उन्मुख सरकार जो निर्गत को सहायता दे न कि निवेश को। (vi) क्रेता उन्मुख सरकार जो क्रेता की आवश्यकताओं की पूर्ति पर विश्वास करती है। (vii) उद्यमी सरकार जो धन कमाने में विश्वास करती है न कि व्यय करने पर। (viii) पूर्वानुमानित सरकार जो उपचार की अपेक्षा प्रतिबंध पर विश्वास करती है। (ix) विकेन्द्रीकृत सरकार जो सहभागिता व टीम भावना से कार्य करती है। (x) बाजार उन्मुख सरकार जो बाजार के माध्यम से परिवर्तन करने पर विश्वास करती है।

इस प्रकार नव लोक प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धान्तों में :– (i) नीति पर नहीं बल्कि प्रबंध व कार्यकुशलता पर ध्यान दिया गया है। (ii) लोक नौकरशाही को विभिन्न अभिकरणों में विभक्त करना जो कि एक दूसरे के साथ प्रयोगकर्त्ता कीमत चुकाए (user-pay basis) के आधार पर व्यवहार करेंगे। (iii) अर्ध–बाजारों का प्रयोग तथा प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के लिए अनुबन्ध विधि का प्रयोग, लागत कमी तथा प्रबन्ध की एक शैली जिसमें निर्गत लक्ष्य, सीमित समयावधि लक्ष्य, मौद्रिक प्रलोभन तथा प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता' होगी।

नवलोक प्रबन्ध में तीन मुख्य बातें हैं :–

(i) स्थानीयकरण (localisation) : स्थानीयकरण में विकेन्द्रीकरण व सत्ता हस्तांतरण की प्रवृत्ति होती है। शक्ति सरकार के निचले स्तरों को हस्तांतरित कर दी जाती है।

(ii) बाह्यकरण (Externalisation) : बाह्यकरण का आशय सरकारी प्रकार्यों में गैर सरकारी अभिकरणों को ठेके पर दे देने से है।

(iii) नौकरशाही निवारण (deburecaucratisation) नौकरशाही निवारण जैसे – परम समाप्ति, आकार में कमी, विकेन्द्रीकरण, पदसोपान तोड़ना या संगठन को आन्तरिक रूप से अनेकों स्वायत्त इकाईयों में बांटना, सुपुर्दगी व्यवस्था को सशाक्त बनाना इत्यादि।

'नव लोक प्रबंध' परिणामोन्मुख है। इसका विश्वास संगठनों, कार्मिकों, रोजगार की सेवा शर्तों में है। यह संगठनात्मक एवं कार्मिक लक्ष्यों की स्पष्ट परिभाषा चाहता है। कार्मिकों की कार्यशीलता का मापन कठोर रूप से इन्हीं आधारों पर किया जाना चाहिए। ऐसा प्रबन्ध सुझावात्मक एवं विवरणात्मक (prescriptive and descriptive) है। इसके अभिप्रेरक तीन 'ई' हैं – मिव्ययता (Economy), कार्यकुशलता (efficiency) तथा प्रभावशीलता (effectiveness)। यह नौकरशाही की काटछांट तथा वर्तमान राज्य के प्रकार्यों में कमी करने का पक्षधर है। यह दिशा निर्देशन एवं चालन (steering and rowing) के मध्य पृथक्करण पर विश्वास करता है। इस प्रकार, नव लोक प्रबन्ध के अन्तर्गत सामाजिक मामलों में सरकारी संलग्नता की प्रकृति में एक जबरदस्त परिवर्तन हो जाता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

एन0पी0एम0 के ज्यादतर अध्ययन केलिफोरनिया राज्य से सम्बन्धित हैं इसलिए इनका सामान्यीकरण विकासशील देशों के सम्बन्ध में करना ठीक नहीं होगा। इसके अतिरिक्त अधिकतर विद्वान जिन्होंने इस पर अध्ययन किए हैं लोक प्रशासन से सम्बन्ध नहीं रखते। बाजार समर्थक सरकार के सिद्धान्त को बढ़ावा देने के लिए एन0पी0एम0 के समर्थकों ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में सेंध लगा दी है जो न्यायसंगत नहीं है। यह सार्वजनिक हित को बढ़ावा देने वाले राज्य की बजाय बाजार अर्थ व्यवस्था पर बल देता है।

ऑसबोर्न तथा गैबलर ने प्रौद्योगिकी सरकार और लागत कम करने के उपाय का जिक्र करते हुए कहा है कि पैसे का खर्च इसी प्रकार करना चाहिए जैसे एक व्यक्ति अपनी जेब से खर्च करता है। सी0 पोलिट आदि विद्वान एन0पी0म0 को टेलरवाद की वापसी मानते है। जिसमें कुशलता और मितव्ययता को महत्त्व दिया जाता है।

भारत जैसे विकासशील देशों में सरकार की जिम्मेदारी बाजार को नहीं सौंपी जा सकती जहाँ आज भी गरीबी की रेखा के नीचे रह रही लगभग 30% जनसंख्या को सरकारी सुरक्षा की सख्त आवश्यकता है।

फ्रेड के अनुसार सरकार को बाजार और नागरिकों को ग्राहक मानने से शासन की कार्यप्रणाली, सेवा संचालन एवं आपूर्ति की समस्याएं बढ़ने के अधिक अवसर नजर आते हैं क्योंकि सरकार को कमजोर करके बाजार को सशक्त करने से जो लाभ पर आधारित है, जनसेवा की भावना लगभग समाप्त हो जाएगी।

7. अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक प्रशासन का अर्थ व परिभाषा लिखिए।
2. लोक प्रशासन के पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण को समझाइए।
3. लोक प्रशासन के क्षेत्र पर टिप्पणी लिखिए।
4. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानता के संदर्भ में दो तर्क दीजिए।
5. लोक प्रशासन के विज्ञान के पक्ष में कोई तीन तर्क दीजिए।
6. लोक प्रशासन के विकास में वुडरो विल्सन के योगदान को समझाइए।
7. नवीन लोक प्रशासन के उद्देश्य कौन–कौन से हैं।
8. प्रथम द्वितीय मिन्नोबुक सम्मेलन में क्या अंतर है।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक प्रशासन के महत्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन की असमानता के संदर्भ में विस्तार से तर्क दीजिए।
3. लोक प्रशासन के विकास के चरणों को विस्तार से समझाइए।
4. नवीन लोक प्रशासन के उदय एवं विकास को विस्तार से समझाइए।
5. नवीन लोक प्रशासन की विशेषताओं तथा लक्ष्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–2

1. संगठन : अर्थ, आधार एवं प्रकार

(Organisation: Meaning, Bases and Types)

प्रशासन में किसी निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिए अनेकों व्यक्ति मिलकर प्रयास करते हैं, परन्तु उनका प्रयास यदि एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार होगा तो वे निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे, नहीं तो उनका यह प्रयास विफल हो जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी भी कार्य को आरंभ करने से पहले उसको अच्छी तरह नियोजित कर लिया जाए, इसी को संगठन कहते हैं। प्रशासन की सफलता उसके कर्मचारी वर्ग की दक्षता तथा कार्यकुशलता पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि समुचित संगठन पर निर्भर करती है। वास्तव में संगठन प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण आधार है।

संगठन का अर्थ (Meaning of Organisation)

'Organisation' शब्द की उत्पत्ति 'Organism' से हुई है जिसका आशय उस संरचना से है जो विभिन्नताओं में विभक्त हो तथा जिसे एक ताने बाने से जोड़ना आवश्यक हो। विश्व में सबसे अधिक जटिल अद्‌भुत व प्रभावशाली संरचना परमात्मा द्वारा निर्मित मानव शरीर की है और विभिन्न अंगों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित करने की कला को ही 'संगठन' कहते हैं। उदाहरण के लिए, जब हमारे मस्तिष्क में कोई विचार पैदा होता है तो उसको क्रियान्वित करने के लिए शरीर के अन्य सभी भाग तत्काल तैयार हो जाते हैं। जैसे ड्राइवर के मस्तिष्क में किसी अमुक दिशा में गाड़ी मोड़ने का विचार आता है, तो स्टीयरिंग पर हाथ तथा गति यन्त्र पर पैर स्वतः ही चले जाते हैं।

'प्रबन्ध' की ही भाँति 'संगठन' के भी दो अर्थ होते हैं। कुछ विद्वानों ने कार्य को विभिन्न इकाइयों में बाँटने की प्रक्रिया को 'संगठन' के नाम से सम्बोधित किया है, जबकि इनके विपरीत कुछ अन्य विद्वानों ने आबंटित कार्य के समाकलन को संगठन कहा है। अनेक समाजशास्त्री 'संगठन' को अन्तर वैयक्तिक (Inter-personal) सम्बन्धों की भूमिका के रूप में परिभाषित करते हैं। 'संगठन' वास्तव में वह तन्त्र है जो लोगों को एक साथ रहने की सामर्थ्य पैदा करता है। चेस्टर बर्नार्ड के शब्दों में ''दो अथवा इससे अधिक व्यक्तियों की सहकारी क्रियाओं की पद्धति को 'संगठन' कहते हैं।''

संगठन की परिभाषाएँ (Definitions of Organisation)

किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानव सहयोग का नाम ही संगठन है– मूने एवं रैली।

परस्पर व्यवहार करने वाले लोगो के वर्ग का नाम संगठन है– हरबर्ट साइमन।

''संगठन एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यवसाय के कार्यों को परिभाषित एवं वर्गीकृत किया जाता है और उन्हें विभिन्न व्यक्तियों को सौंप कर उनके अधिकार सम्बन्धों को सुनिश्चित किया जाता है।'' –थियो हेमेन

''किसी कार्य को पूरा करने के लिए किन–किन क्रियाओं को किया जाय, इसका निर्धारण करना एवं इन क्रियाओं को व्यक्तियों के मध्य वितरित करना ही 'संगठन' कहलाता है।''– उर्विक

''संगठन से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा संस्था के निश्चित लक्ष्यों व उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नियुक्त व्यक्तियों के कार्य का आबंटन किया जाता है।''– सी0एच0 नॉर्थकॉट

दो या अधिक व्यक्तियों की सचेत समन्वित गतिविधियों की व्यवस्था ही संगठन है– चेस्टर इर्विंग बनोर्ड

संगठन के आधार (Bases of Organisation):– संगठन विभिन्न व्यक्तियों के बीच कार्य और उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्य को सुगमता के साथ पूरा करता है। लूथर गुलिक ने किसी भी कार्य को बांटने की चार विभिन्न रीतियाँ अथवा आधारों का वर्णन किया है।

1. कार्य अथवा उद्देश्य (Function or Purpose) सरकार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक कार्य करती है, जैसे शिक्षा का संचालन करना, प्रतिरक्षा, जन स्वास्थ्य की व्यवस्था, पीने के पानी की पूर्ति, अपराधों पर नियंत्रण, यातायात का प्रबन्ध आदि। इन कार्यों को करने के लिए विभिन्न संगठनों का निर्माण किया जाता है। जैसे जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए चिकित्सालय खोले जाते हैं। राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों के प्रमुख विभाग उद्देश्य के आधार पर ही होते हैं। उद्देश्य के आधार पर विभाग बनाने का मतलब यह होता है कि वे सारे लोग जो किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए काम करते हैं चाहे उनकी प्रक्रिया कुछ भी क्यों न हो एक विभाग के अंग हैं जैसे रक्षा विभाग में सैनिक। इस प्रकार संगठन में एक विभाग से सम्बन्धित सारी सेवाएँ उसके नियंत्रण में आ जाती है। जैसे शिक्षा विभाग में प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, उच्चतर शिक्षा आदि।

पक्ष में तर्क अथवा लाभः– (i) संगठन में एक ही तरह का कार्य करने वाले व्यक्ति होने सें उनके लक्ष्यों में समानता पायी जाती है। अतः उनके बीच समन्वय स्थापना तथा कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। (ii) उत्तरदायित्व केवल एक ही व्यक्ति में केन्द्रित रहता है। (iii) संगठन में उद्देश्य प्राप्ति के महत्त्व को समझना आसान हो जाता है। (iv) कार्य शीघ्रता से सम्पन्न क्योंकि सारे साधन एक व्यक्ति के हाथ में होते हैं।

विपक्ष में तर्क अथवा हानिः– (i) ऐसे संगठन के कर्मचारियों का दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित होता है क्योंकि ये केवल अपने संगठन के विषय में ही सोचते हैं। (ii) ऐसे संगठनों में अकसर दोहरापन हो जाता है। जैसे रक्षा और रेलवे विभाग अपना अपना अस्पताल बनवाते हैं। (iii) ये संगठन कार्य विशेषीकरण के विरूद्ध होते हैं।

2. प्रक्रिया अथवा प्रविधि (Process or Technique) प्रक्रिया के अर्न्तगत उन्ही कार्यों को रखा जाता है जिन कार्यो के सम्पादन के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता और कुशलता की आवश्यकता होती है। जैसे – चिकित्सा सेवा, लेखा सेवा, यान्त्रिकी सेवा।

पक्ष में तर्कः (i) इससे तकनीकी क्षेत्र में समन्वय बढ़ता है क्योंकि सारे तकनीकी व्यक्ति एक ही विशेषज्ञ की अधीनता में काम करते हैं। (ii) कार्य विशेषीकरण तथा कार्य विभाजन के फलस्वरूप कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। (iii) दोहरेपन की भावना कम होती है जिससे अपव्य नहीं होगा। (iv) विभागों का निर्माण प्रक्रिया के आधार पर होने से तकनीकी प्रविधियों एवं प्रयोगशालाओं का अधिक उपयोग संभव है।

विपक्ष में तर्कः(i) राज्य और केन्द्र सरकारों का सारा काम प्रक्रिया के आधार पर संगठित किया जाना संभव नहीं। (ii) तकनीकी विशेषज्ञों में अहम् की भावना होती हैं। वे लोकतांत्रिक नियंत्रणों की अधीनता में काम करना अपना अपमान समझते हैं। (iii) इन विभागों में केवल विशेषज्ञ होते हैं। इसलिए सुयोग्य नेतृत्व नहीं मिल सकता। (iv) विशेषीकरण के कारण दृष्टिकोण संकुचित होता है।

3. व्यक्ति (Person) इस पद्धति के अंतर्गत किसी वर्ग विशेष के सदस्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रशासकीय विभागों का संगठन किया जा सकता है। ऐसे विभागों का मूल लक्ष्य व्यक्ति समूह की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। जैसे – जनजाति कल्याण विभाग, महिला एवं बाल विकास विभाग।

पक्ष में तर्कः (i) एक विभाग द्वारा समन्वय बनाने से दूसरे विभागों में भाग दौड़ नहीं करनी पड़ती। (ii) प्रतिवर्ष एक ही व्यक्ति समुदाय अथवा सामग्री के सम्पर्क में आने से विशेष ज्ञान प्राप्ति।

विपक्ष में तर्क (i) सभी स्थानों पर स्थापना संभव नहीं इससे अनेक छोटे छोटे विभाग स्थापित हो जायेंगे। (ii) सारा काम एक ही कार्यालय में हो जाए, यह तभी संभव है जब प्रशासन बहुत कम काम करे और उसमें भी किसी विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं पड़े। (iii) ऐसे विभागों के कर्मचारियों में कार्यकुशलता का अभाव पाया जाता है क्योंकि उनका सम्बन्ध किसी वर्ग विशेष से होता है। (iv) राजनीतिक दबाव बहुत अधिक बढ़ जाता है। ये संगठन स्वार्थ भावना से उत्पन्न होते हैं।

4. प्रदेश या क्षेत्र (Area or Place) क्षेत्र के आधार पर बनाये गये संगठनों में ऐसे लोग हैं जो एक ही क्षेत्र में काम करते हैं। जिला प्रशासन क्षेत्र के आधार पर संगठन का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त – दामोदर घाटी योजना, गोरखा पर्वतीय विकास परिषद, दक्षिण–एशिया सहयोग संगठन।

पक्ष में तर्कः (i) किसी क्षेत्र के विकास के लिए ये संगठन अत्यन्त उपयोगी होते हैं। (ii) इनमें आवश्यक खर्चे कम होते हैं जिससे संगठन में मिव्ययता अधिक होती है। (iii) इनमें कार्यक्रम और योजनाओं का क्षेत्र आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। (iv) इनमें समन्वय की सुविधा होती है। (v) इनके कर्मचारी क्षेत्रीय परिस्थितियों के विषय में अच्छी तरह परिचित होते हैं। कार्यक्रम जनता की सुविधा की दृष्टि से चला सकते हैं। इससे सरकार और जनता से संपर्क अच्छा स्थापित होता है।

विपक्ष में तर्कः (i) ये संगठन क्षेत्रीयता की भावना को बढ़ावा देते हैं। (ii) इससे श्रम विभाजन और विशेषीकरण का लाभ प्राप्त नहीं होता। (iii) इन विभागों की नीतियों से प्रशासन की एकरूपता के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त चारों आधारों के पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए गए हैं सभी में कुछ न कुछ गुण और अवगुण हैं। इनमें कोई भी आधार ऐसा प्रतीत नहीं होता जिसे गुणों के आधार पर संगठन के लिए पूर्ण रूप से अपना लिया जाये, अथवा अवगुणों के आधार पर सभी प्रकार के संगठनों के लिए अनुपयुक्त मान लिया जाये। आमतौर पर कोई भी संगठन इनमें से सिर्फ एक आधार पर ही आश्रित नहीं रहता बल्कि एक से अधिक आधारों को अपनाता है।

संगठन प्रक्रिया के आवश्यक कदम (Essential Steps in Organisational Process)

(i) उद्देश्य निश्चित करना (Determination of Objectives) उद्देश्य तर्कसंगत एवं न्यायपूर्ण होने चाहिए जिन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सके।

(ii) आवश्यक क्रियाएँ निर्धारित करना (Determining the Essential Activities) प्रत्येक कार्य के उद्देश्य, आकार, प्रकृति और उत्तरदायित्व के आधार पर क्रियाओ का निर्धारण हो।

(iii) क्रियाओं का श्रेणीबद्ध करना (Grading the Activities) उत्पादन, क्रय–विक्रय, वित्तीय साधन और कर्मचारी प्रबन्ध के आधार पर क्रियाए श्रेणीबद्ध करनी चाहिएं।

(iv) उत्तरदायित्व सौंपना (Assignment of Responsibility) क्रियाओं का श्रेणीकरण करके की कार्य के प्रति रूचि और योग्यता को ध्यान मे रखकर उत्तरदायित्व निर्धारित कर देना चाहिए।

(v) प्राधिकार प्रत्यायोजन (Delegation of Authority) कर्मचारियों को कर्त्तव्य के साथ अधिकार भी दिए जाने चाहिए जिससे वे अपने कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक वहन कर सकें

(vi) समन्वय (Co-ordination) संगठन के सभी विभागों एवं उपविभागों में समन्वय किया जाये।

(vii) उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति का चयन (Selection of Right Person for the Right Job) सभी कार्यों

पर योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति नियुक्त किये जायें तथा कर्मचारियों का चयन निष्पक्ष होना चाहिए। इसके लिए कर्मचारियों की तकनीकी योग्यता, यचि और रूझान का विशेष ध्यान रखा जाए।

(viii) उचित कार्य वातावरण (Right Working Environment) जैसे उचित एवं सुविधाजनक स्थान पर कार्यालय लगाना, कर्मचारियों के लिए आवश्यक साजो–सामान एवं उपकरणों की व्यवस्था करना और समय समय पर उनका मनोबल बढ़ाना आदि।

एक स्वस्थ व सुदृढ़ संगठन की विशेषताएं (Characteristics of a Healthy and Sound Organisation) एक आदर्श या सुदृढ़ संगठन वह है जिसमें संगठन के समस्त आवश्यक सिद्धान्तों का पालन किया जाता है तथा जो सरकार के अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है। पीटर एफ0 ड्रकर ने आदर्श संगठन की विशेषताएँ निम्न बताई हैं –

(i) स्पष्ट प्राधिकार रेखाएँ (Clear Allocation of Authority) संगठन में ऊपर से नीचे तक अधिकार रेखाएं स्पष्ट रूप से उल्लिखित होनी चाहिएं। इस आवश्यकता का आधार 'स्केलर सिद्धान्त' है।

(ii) स्पष्ट उत्तरदायित्व (Clear Allocation of Responsibility) कर्मचारी किसके प्रति तथा उनके प्रति कौन उत्तरदायी है, इसका स्पष्ट विवेचन होना चाहिए। तथा 'आदेश की एकता तथा उत्तरदायित्व के सिद्धान्त' का पालन होना चाहिए।

(iii) अधिकारों तथा दायित्वों में समानता (Balancing of Rights and Responsibility) अधिकार दायित्व के अनुरूप एवं दायित्व अधिकारों के अनुरूप होने चाहिए। इसकी आवश्यकता का आधार 'अधिकार–सत्ता का सिद्धांत' है।

(iv) उद्देश्यों के प्रति जागरूकता (Consciousness towards Objectives) संगठन में सभी व्यक्ति उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहने चाहिए तथा 'उद्देश्यों की एकता' के सिद्धान्त का पालन होना चाहिए।

(v) नियन्त्रण का उपयुक्त क्षेत्र (Proper Span of Control) नियन्त्रण का क्षेत्र अधिक व्यापक अथवा अधिक सीमित नहीं होना चाहिए। इस आवश्यकता का आधार 'नियन्त्रण के विस्तार' का सिद्धान्त है।

(vi) कार्यों का समूहीकरण एवं आबंटन (Grouping and Allotment of Functions) सभी कामों को समूहों में बाँटकर फिर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार कार्य दिया जाना चाहिए। इस आवश्यकता का आधार 'विशिष्टीकरण' का सिद्धान्त है।

(vii) साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग एवं संस्था का विकास (Optimum Use of Resources and Develoment of the Institution) संगठन के समस्त भौतिक व मानवीय संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'निरन्तरता के सिद्धान्त', 'समन्वय के सिद्धान्त' आदि को अपनाना अत्यावश्यक है।

(viii) कर्मचारी सन्तुष्टि एवं विकास (Employees Satisfaction and Developmoent) एक संगठन के सभी कर्मचारी संतुष्ट होने चाहिए जिससे उनका मनोबल ऊंचा बना रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतू 'मानवीय दृष्टिकोण' अपनाना चाहिए।

(ix) प्रभावी संचार की व्यवस्था (Effective Communication System) उपक्रम के प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि संस्था में क्या हो रहा है, क्या होने वाला है तथा क्या होगा इत्यादि।

(x) प्रभावी नेतृत्व (Effective Leadership) प्रभावी नेतृत्व से ही संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग सम्भव हो सकता है एवं संस्था में उचित समन्वय व मधुर सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

(xi) लोच (Elasticity) थोमस आर0 जोन्स के शब्दों में, ''एक संगठन की रचना इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह व्यवसाय के विकास एवं अनुसंधान तथा बाह्य परिस्थितियों के साथ ही अपने आप को परिवर्तित कर सके।

2. संगठन का वर्गीकरण (प्रकार)

(Classification or Types of Organisation)

संगठनों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है– (1) व्यावसायिक व गैर–व्यावसायिक संगठन (2) औपचारिक व अनौपचारिक संगठन (3) खुले व बन्द संगठन।

1. **व्यावसायिक व गैर–व्यावसायिक संगठन (Business and Non-Business Organisation):** 'व्यावसायिक संगठनों' का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है। अधिकांशतः संगठनों का निर्माण, चाहे वह साझेदारी संगठन हो या कम्पनी संगठन अथवा निगम, लाभ के उद्देश्य से ही किया जाता है। परन्तु आधुनिक युग में, व्यावसायिक सफलता की दृष्टि से लाभ भावना के साथ सेवा भावना का भी ध्यान रखा जाता है।

   गैर–व्यवसायिक संगठनों (Non-Buisness Organisations) में लाभ की भावना कम होती है। जिनमें शैक्षिक संगठन जैसे विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोध व अनुसंधान संस्थान, सैनिक या सुरक्षा संगठन, हित संरक्षण संगठन, जैसे श्रम संघ, चेम्बर ऑफ कॉमर्स, नियोक्ता संघ, धार्मिक संगठन जैसे मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, गिरजाघर इत्यादि शामिल हैं।

2. **औपचारिक व अनौपचारिक संगठन (Formal and Informal Organisations) (1) औपचारिक संगठन (Formal Organisation) :** औपचारिक संगठन उसे कहते हैं जिसमें संगठन का स्वरूप व्यवस्थित ढंग से नियोजित तथा रूपांकित किया गया हो तथा जिसको प्राधिकारी सत्ता द्वारा मान्यता दे दी गई हो। इसमें सम्बन्धों का आकार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र में निर्धारित कर दिया जाता है। संगठन के ढांचे की योजना औपचारिक रूप से बना ली जाती है। उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्भावित सम्बन्धों का उल्लेख लिखित आचार संहिताओं में कर दिया जाता है। यह संगठन का वह स्वरूप है जो पर्यवेक्षक को बाहर से दिखाई देता है। अमीत्ताई एतजीउनी (Amitai Etzioni) के अनुसार, ''औपचारिक संगठन वह है जो साधारण तौर पर उस संगठनात्मक ढांचे को प्रकट करता है, जो प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है तथा जिसमें श्रम के विभाजन तथा नियन्त्रण की शक्ति का खाका, श्रम, दंड, नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित नियम तथा विनियम शामिल होते हैं।'' चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार प्रत्येक औपचारिक संगठन के निर्माण के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है :– (i) प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ सम्प्रेषण करने की स्थिति में हो, (ii) वे काम करने के लिए तत्पर हों, और (iii) उनके उद्देश्य समान हो।

औपचारिक संगठन की विशेषताएँ (Features of Formal Organisation)

(i) कानूनी दर्जा (Legal Status): सरकारी स्तर पर कोई संगठन बनाने के लिए संसद या विधान सभा को कानून बनाना पड़ता है। आयकर विभाग का गठन आयकर अधिनियम द्वारा किया गया। हरियाणा, दिल्ली या पंजाब के नगर निगमों के गठन के लिए संबद्ध राज्यों के विधानमंडलों ने कानून बनाए। जीवन बीमा निगम, खाद्य निगम आदि।

(ii) कार्य का विभाजन (Division of Work): कार्ये विभाजन प्रबन्ध के स्तर, अधिकारियों के पद और उनके कार्यक्षेत्र द्वारा निर्धारित होता है अतः इसमें कार्य का विभाजन बहुत आसानी से हो जाता है। इससे संगठन कुछ

कार्यों में विशेषज्ञता प्राप्त करके अपने लक्ष्यों को हासिल करता है।

(iii) ढाँचे की प्रधानता (Primacy of Structure): उर्विक के अनुसार ढाँचे का अभाव असंगति, क्रूरता, बर्बादी और अकर्मण्यता का प्रतीक है। ढाँचा बहुत स्पष्ट होता है और संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की भूमिका भी निश्चित होती है।

(iv) स्थायित्व (Permanency): औपचारिक संगठन परिस्थितियों के अनुसार अपना ढाँचा और उद्देश्य बदल लेते हैं किन्तु सामान्यतः उनका गठन लम्बे समय के लिए ही किया जाता है।

(v) नियम और व्यवस्थाएँ (Rules and Regulations): इनमें कार्यरत अधिकारी अपनी पसंद नापसंद से फैसले नहीं कर सकते। बल्कि वे निर्धारित नियमों और व्यवस्थाओं की सीमा में काम करते हैं।

लाभ (Advantages)

(i) **स्पष्ट, निश्चित व भ्रम रहित** (Clear-cut, Certain and Free from Confusion) औपचारिक संगठन में प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार व दायित्व पहले से ही स्पष्ट होते हैं, इसलिए इनमें दोहरेपन या भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं रहता। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों, उत्तरदायित्वों व समस्त क्रियाओं में निश्चितता बनी रहती है।

(ii) **विशिष्टीकरण (Specialisation)** इस संगठन में श्रम विभाजन के सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण विशिष्टीकरण के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

(iii) **कर्मचारियों की कार्यकुशलता का मूल्यांकन (Evaluation of Employees Performance)** अधिकार एवं दायित्व स्पष्ट होने के कारण कर्मचारियों के कार्यों तथा कार्यकुशलता का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।

(iv) **पदोन्नति (Promotion)** उच्च स्तर से निम्न स्तर तक की सोपान–शृंखला पदोन्नति के मार्ग को स्पष्ट करती है।

(v) **संगठन के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक (Aid in Achieving the Goals of the Organisation)** औपचारिक संगठन संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं क्योंकि सभी बातें पूर्व नियोजित व स्पष्ट होती हैं।

(vi) **समन्वय में सुविधा (Facilitates Co-ordination)** सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या के कारण मध्य समन्वय स्थायित्व करने में भी सुविधा होती है।

(vii) **पक्षपात रहित (No Biasness)** सभी कार्य नियमानुसार व नियत सिद्धान्तों के अनुसार किये जाते हैं तथा कहीं भी पक्षपात नहीं होता।

(viii) **पद्धति का महत्त्व (Importance of the System)** इसमें व्यक्ति विशेष के स्थान पर विशिष्ट पद्धति या प्रणाली का महत्त्व होता है।

(ix) **मधुर सम्बन्ध (Cordial Relations)** अधिकारों एवं दायित्वों के स्पष्ट विभाजन से संगठन में मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

(x) **अन्य लाभ (Other Advantages)** (i) श्रम–विभाजन से सुरक्षा की भावना बनी रहती है, (ii) लालफीताशाही समाप्त होती है, (iii) साधनों का श्रेष्ठतम व गहन प्रयोग सम्भव होता है, (iv) कोई भी व्यक्ति अपनी असफलता का दोष दूसरों पर नहीं डाल सकता, (v) ये संगठन तर्कसंगत, व्यवस्थित तथा दिशात्मक होते हैं।

दोष (Demerits)

(i) **मानवीय भावनाओं की अनदेखी (Ignores Human-Sentiments)** ऐसे संगठन में मानवीय भावनाओं को ध्यान में नहीं रखा जाता। वास्तव में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और बिना सामाजिक सम्बन्धों के वह जीवित नहीं रह सकता।

(ii) **अव्यावहारिक (Impractical)** इसमें यान्त्रिक रूप से काम किया जाता है। व्यवहार में ऐसे आदर्श सम्बन्ध देखने को नहीं मिलते।

(iii) **पहलपन का अभाव (Lack of Initiative)** कर्मचारियों को पहलपन का अवसर नहीं दिया जाता।

(iv) **कठोर (Rigid)** काम निर्धारित विधियों व पद्धतियों के अनुसार किये जाते हैं जिससे कार्य निष्पादन में लोच नहीं रहती।

(v) **अधिकारों का दुरुपयोग (Misuse of Powers)** इसमें अधिकारों के भारार्पण पर बल जिससे अधिकारों के दुरुपयोग की आशंका बनी रहती है।

(vi) **अन्य दोष (Other demerits)** (i) यह नौकरशाही को जन्म देता है, (ii) समन्वय और नियन्त्रण की समस्या को जन्म देता है, (iii) अनौपचारिक सम्बन्धों के संवहन में बाधा पैदा होती है, (iv) लोक नियमों व आदेशों के गुलाम बन जाते हैं एवं सामाजिक संगठनों की सामान्य मान्यताओं व भावनाओं को भूल जाते हैं, (v) अत्यधिक नियम व पद्धतियों के कारण लालफीताशाही पनपती हे, (vi) लोगों का दृष्टिकोण भी संकुचित होता है, तथा (vii) अधिकारी व अधीनस्थ के सम्बन्ध तनावपूर्ण होने की आशंका रहती है।

2. अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation)

वे संगठन, जो उसमें कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग के वास्तविक व्यवहार के नमूने पर आधारित होते हैं अनौपचारिक संगठन कहलाते है। इसकी उत्पत्ति को एल्टन मैयो द्वारा प्रतिपादित मानव–सम्बन्ध–पद्धति में तलाश किया जा सकता है। एक संगठन उस दशा में अनौपचारिक कहा जाता है जब अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना संयुक्त उद्देश्य के लिए अनजाने में हो जाती है। अनौपचारिक संगठन वह सामाजिक ढाँचा है जिसका निर्माण वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। कीथ डेविस के अनुसार अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत एवं सामाजिक संगठनों का ऐसा जाल है जिसे स्थापित करने के लिए किसी औपचारिक संगठन की स्थापना की आवश्यकता नहीं पड़ती। जोसेफ एल0 मैसी ने औपचारिक संगठन को मानवीय क्रियाओं का समूह बताया है जो स्वतः एवं स्वाभाविक ढंग से दीर्घकालीन अवधि तक साथ रहने से पैदा हो जाते हैं। चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार अनौपचारिक संगठन एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति निरन्तर एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं किन्तु उनके सम्बन्धों का नियन्त्रण औपचारिक संगठन द्वारा नहीं किया जाता बल्कि वे एक दूसरे से अन्तर सम्पर्क करते हैं। अनौपचारिक संगठन में मानवीय समस्या का समाधान मानवीय आंकड़ों एवं यन्त्रों से किया जाता है।

लक्षण या विशषताएँ (Characteristics): (i) अनौपचारिक संगठनों का निर्माण सवतः होता है (ii) ये प्राकृतिक व सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होते हैं (iii) ऐसे संगठनों का निर्माण व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है (iv) अनौपचारिक संगठन को चार्ट द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है। (v) ये औपचारिक संगठन के पूरक होते हैं (vi) ये प्रबन्ध के सभी स्तरों पर पाये जाते हैं (vii) अनौपचारिक संगठन सम्पूर्ण संगठन का आन्तरिक भाग है। (viii) ये पदों की क्रमबद्धता से मुक्त होते हैं। (ix) इनके अपने नियम, प्रणालियाँ, पद्धतियाँ व परम्पराएँ होती हैं जिनका ये पालन करते हैं।

लाभ (Advantages): (i) ये समूह के सदस्यों को सामाजिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं (ii) सदस्यगण इनसे मैत्री भावना, अन्य व्यक्तियों से मान्यता, सहयोग, सुरक्षा तथा आत्मसम्मान की भावनाओं की सन्तुष्टि करते हैं (iii) ये

औपचारिक संगठन की दुर्बलताओं को दूर करते हैं (iv) इसमें कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं तथा पारस्परिक समझ का सृजन होता है (v) यह मानवीय व्यवहार पर सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने का प्रभावी अभिकरण है (vi) ये प्रभावी सम्प्रेषण के श्रेष्ठ साधन हैं (vii) ये अधिक कार्य हेतु अभिप्रेरण प्रदान करते हैं (viii) इनमें संगठन के सदस्यों का मनोबल सदैव ऊँचा रहता है (ix) ये प्रभावी समन्वय स्थापित करने में सहायक होते हैं (x) ऐसे संगठन प्रबन्धकीय योग्यता की कमियों की पूर्ति करने में सहायता करते हैं (xi) इनमें वरिष्ठ कनिष्ठ, प्रदर्शन तथा भेदभाव का अभाव होता है (xii) इनमें योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन आसानी से हो जाता है (xiii) ये कर्मचारियों में मधुर सम्बन्धों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

दोष (Disadvantages): (i) ऐसे संगठन भीड़ प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करते हैं (ii) ये अफवाहें फैलाते हैं जिससे लोगों में अनावश्यक भ्रम पैदा होता है। (iii) ये परिवर्तन का विरोध करते हैं (iv) ऐसे संगठन कभी कभी विनाशकारी स्वभाव के होते हैं। (v) ये अकुशल श्रमिकों को संरक्षण देते हैं। (vi) इनमें उत्तरदायित्व का निर्धारण करना कठिन होता है। (vii) ये अस्थायी एवं अल्प आयु के होते हैं।

औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में अन्तर
(Difference between Formal and Informal Organisation)

औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
(i) यह अधिकार के प्रत्यायोजन के कारण निर्मित होता है।	यह लोगों की सामाजिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पैदा होता है।
(ii) इसके अंतर्गत अधिकार एवं कार्यों पर बल दिया जाता है।	इसके अंतर्गत लोगों व उनके संबंधों पर बल दिया जाता है।
(iii) यह जान बूझकर निर्मित किया जाता है।	यह स्वतः एवं स्वाभाविक रूप से निर्मित होता है।
(iv) औपचारिक अधिकार किसी एक पद से संबंधित होते हैं	अनौपचारिक अधिकार किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित होता है।
(v) औपचारिक संगठन का आकार बहुत बड़ा होता है।	अनौपचारिक संगठन का आकार छोटा होता है।
(vi) नियम, कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व लिखित रूप में निर्धारित किए जाते हैं।	इसमें नियम तथा परम्पराएँ अलिखित होती हैं।
(vii) यह उन बाहरी व्यक्तियों से प्रभावित होता है जो कि रेखीय स्तर के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं।	यह उन व्यक्तियों से प्रभावित होता है, जो समूह के नियंत्रण में होते हैं।
(viii) औपचारिक अधिकार ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है।	अनौपचारिक अधिकार ऊपर से या समतल के रूप में प्रवाहित होता है।
(ix) यह तकनीकी उद्देश्यों के लिए निर्मित किया जाता है।	यह मनुष्य की सामाजिक तुष्टि की खोज के कारण पैदा होता है।
(x) यह अधिक स्थायी होता है।	यह अपेक्षाकृत कम स्थायी होता है।

उपर्युक्त भिन्नताओं के बावजूद भी औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन स्पष्ट रूप से एक दूसरे के पूरक होते हैं। प्रत्येक औपचारिक संगठन के अन्तर्गत एक अनौपचारिक संगठन होता है और प्रत्येक औपचारिक संगठन के अन्तर्गत कम से कम कुछ संगठनात्मक अनौपचारिकता विद्यमान रहती है।

3. बन्द व खुले संगठन (Closed and Open Organisation): पहली श्रेणी के संगठन ब्यूरोक्रेटिक, पदसोपानिक, यान्त्रिक हैं जबकि दूसरी श्रेणी के संगठन सामूहिक, स्वतन्त्र बाजार और प्रतियोगिता पर आधारित तथा आंगिक होते हैं।

बन्द संगठन	खुले संगठन
(i) स्थिर स्थितियों में दैनिक कार्य	अस्थिर स्थितियों में विभिन्न कार्य
(ii) श्रम विभाजन पर बल	सामान्य कार्यों के लिए विशेष ज्ञान
(iii) साधनों (means) पर जोर	उद्देश्य (ends) पर जोर
(iv) संगठन में अन्तरविरोध का शिखर प्रबन्ध द्वारा निदान किया जाता है।	अन्तरविरोध का निदान सहकर्मचारियों से वार्तालाप के द्वारा किया जाता है।
(v) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर जोर	व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से छुटकारा
(vi) कर्मचारी का उत्तरदायित्व तथा वफादारी केवल अपनी उप–इकाई के प्रति	उत्तरदायित्व तथा वफादारी समस्त संगठन के प्रति
(vii) पदसोपान पर आधारित तथा पिरामिड आकार के होते हैं।	पदार्थिय ढांचा तथा अमीबा आकार के होते हैं।
(viii) केवल मुख्य कार्यपालिका के पास ज्ञान भण्डार	ज्ञान संगठन के हर स्तर पर होता है।
(ix) कर्मचारियों में अन्तः प्रक्रिया रेखीय आधार पर होती है।	यह समतल आधार पर होती है।
(x) अन्तः प्रक्रिया के ढंग आज्ञा, आदेश तथा वरिष्ठ–कनिष्ठ सम्बन्धों पर बल।	अन्तः प्रक्रिया के तरीकों में प्रबन्ध द्वारा सलाह, कर्मचारी–सम्बन्धों पर बल।
(xi) व्यक्तिगत स्तर कर्मचारी के कार्यालय तथा पद से जुड़ा होता है।	यह कर्मचारी की व्यवसायिक योग्यता तथा यश से जुड़ा होता है।

3. संगठन के सिद्धान्त

(Principles of Organisation)

लोक प्रशासन के विषय के रूप में विकास के दूसरे चरण में विद्वानों और विचारकों द्वारा संगठन के अनेक सिद्धान्त विकसित किए गए। इसलिए इसे सिद्धान्तों का स्वर्ण युग कहा जाता है। संगठन मे इन सिद्धान्तों को लागू करके हम वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित कर सकते हैं। संगठन को लागू करके हम वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित कर सकते हैं। संगठन के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाले प्रमुख विचारक लिण्डल उर्विक, लूथर गुलिक, जेम्स मूने तथा रैले, हेनरी फेयोल, फ्रेडरिक विन्सलों, टेलर, विलोबी इत्यादि थे। परन्तु कुछ लेखकों जैसे हर्बर्ट साइमन ने इन सिद्धान्तों को 'कल्पनाएँ' (myths) और 'कहावतें' (proverbs) कहकर पुकारा है। संगठन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

पदसोपान (Hirarchy):- पदसोपान अथवा क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त (Principle of Hierarchy or Salar Process) प्रत्येक प्रशासकीय संगठन में किसी न किसी प्रकार का पदसोपान होता है। पदसोपान का शाब्दिक अर्थ

है निम्नतर पर उच्चतर का शासन अथवा नियन्त्रण, परन्तु यथार्थ दृष्टि से इसका अभिप्राय एक ऐसे संगठन से होता है, जो पदों के एक उत्तरोत्तर क्रम (successive steps) के अनुसार सोपान की भाँति संगठित किए गए हैं। प्रशासनिक संगठनों में किया जाने वाला कार्य विभाजन, पद वर्गीकरण, निर्णय एवं नियंत्रण की व्यवस्था तथा अनुशासन की स्थापना पदसोपान से सम्बन्धित है। इसी के द्वारा उत्तरदायित्व की पंक्ति निश्चित होती है। उच्च एवं निम्न अधिकारी की पदस्थिति तय होती है।

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions)

''पदसोपान, ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्वों के कई स्तरों के कारण उत्पन्न वरिष्ठ–अधीनस्थ का वह सम्बन्ध है, जो सभी जगह लागू होता है।''एल0डी0 व्हाइट

''पदसोपान, उच्च तथा निम्न पदों की ऐसी सुनियोजित व्यवस्था है जो ऊपर से नीचे तक फैली हुई है। इस व्यवस्था में सर्वोच्च अधिकारी अपने पर विराजमान रहते हुए पैनी दृष्टि से सबसे निम्नतम पदधारक कार्मिकों के दिलों को टटोल सकता है तथा उनकी गतिविधियों को अपने आदेशानुसार जैसा चाहे ढाल सकता है। इस प्रकार पदसोपान में संगठन की गतिविधियों को मार्गदर्शन तथा उन पर नियंत्रण रखने हेतु सभी इकाइयों को संयुक्त करके एक बड़ी इकाई बना दिया जाता है।''– अर्ल लैथम

''पदसोपान, एक ऐसी पद्धति है जिसमें विभिन्न व्यक्तियों (कार्मिकों) के प्रयासों को आपस में जोड़ दिया जाता है।''– जे0डी0 मिलेट

मूने एवं रैली ने पदसोपान व्यवस्था को सीढ़ीनुमा प्रक्रिया या सिद्धान्त (Scalar Process) का नाम दिया है तथा हेनरी फेयोल ने इसे सोपानात्मक श्रृंखला (Scalar Chain) कहा है। उनके अनुसार जहाँ कहीं भी उच्च तथा अधीनस्थ के सम्बन्धों से बना संगठन होगा, वहीं पर यह सीढ़ीनुमा प्रक्रिया भी अवश्य होगी। किसी भी संगठन में कार्यों तथा उत्तरदायित्वों का वितरण समतल (horizontal) और खड़ी (vertical) दोनों दिशाओं में होता है। संगठन में ऊर्ध्वाधर विभाजन में शीर्ष पद, मध्यम पद तथा निम्न पदों की स्थिति होती है। जब संगठन में नए नए पद एवं स्तर जोड़े जाते हैं तो यह ऊर्ध्वाधर वृद्धि होती है जबकि क्षैतिजिक विभाजन में सोपान के स्तरों में वृद्धि किए बिना ही नए नए कार्य या स्थान जोड़ दिए जाते हैं।

''संसाधनों के विभाजन, कार्मिकों के चयन तथा कार्य विभाजन, कार्यों के संचालन, समीक्षा तथा सुधार के क्रम में पदसोपान एक साधन है।''– पॉल एच0 एपलबी

विशेषताएँ (Characteristics) (i) इस पद्धति में समस्त प्रशासनिक क्रियाकलापों को इकाईयों तथा उपइकाइयों में विभाजित किया जाता है जिससे पिरामिड जैसा आकार बन जाता है। (ii) इसमें विभिन्न स्तरों को अधिकार सौंपे जाते हैं। (iii) 'उचित माध्यम से' सिद्धान्त का पालन कर आदेश तथा सूचनाएँ गुजरते समय किसी भी स्तर को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। (iv) व्यक्ति निकटतम वरिष्ठ अधिकारी से आदेश लेता है अन्य अधिकारी से नहीं, अतः 'आदेश की एकता' का सिद्धान्त भी लागू होता है। (v) इसमें अधिकार तथा उत्तरदायित्व के मध्य समुचित तालमेल रखा जाता है, क्योंकि बिना उत्तरदायित्वों के अधिकार खतरनाक हो जाते हैं तथा बिना अधिकार के उत्तरदायित्व अर्थहीन हो जाते हैं।

यह कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करने और कार्य का विभाजन, विशेषज्ञों के कार्य तथा व्यवहार को एक संयुक्त प्रयास में जोड़ने का कार्य करती है।

पदसोपान के प्रकार (Types of Hierachy): जे0एम0 पिफनर तथा एफ0 एम0 शेरवुड ने चार प्रकार की पदसोपान प्रणालियाँ वर्णित की हैं :–

(i) **कार्य आधारित पदसोपान :** इस प्रणाली में कर्मचारी जिस प्रकार का कार्य करता है उसी के अनुरूप उसे अधिकार एवं उत्तरदायित्व प्रदान किए जाते हैं। स्वाभाविक रूप से अधिक अधिकारों से युक्त व्यक्ति, उच्च पद पर तथा तुलनात्मक रूप से कम अधिकार प्राप्त व्यक्ति, पदसोपान में निम्न पद पर होता है।

(ii) **रैंक (प्रस्थिति) आधारित पदसोपान :** इस प्रणाली में कर्मचारियों की स्थिति उनके कार्य तथा उत्तरदायित्वों के आधार पर न होकर, पद के आधार पर होती है। जैसे सेना का एक कर्नल चाहे, मोर्चे पर आदेश दे या सेना मुख्यालय में फाइलें निपटाये, वह कर्नल ही रहेगा।

(iii) **कौशल आधारित पदसोपान :** पदसोपान की इस पद्धति में कर्मचारी की योग्यता तथा दक्षता पर बल दिया जाता है। किसी कारखाने में कार्यरत इंजीनियर या अस्पताल में डॉक्टर उच्च कौशल युक्त होते हैं जिनकी सहायतार्थ अनेक सहायक विशेषज्ञ एवं तकनीकी कर्मचारी कार्य करते हैं। उच्च विशेषज्ञता प्राप्त कार्मिक, उच्च पद पर रहता है।

(iv) **वेतन आधारित पदसोपान :** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है अधिकतम वेतन पाने वाला अधिकारी संगठन के शीर्ष पर तथा कम वेतन पाने वाले कर्मचारी क्रमशः नीचे के पदों पर होते हैं।

पद–सोपान सिद्धान्त के लाभ (Advantages of the Principle of hierarchy)

मूरे (Moorey) के अनुसार यह संगठन का सार्वभौम सिद्धान्त है। इसके मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :– (i) पदसोपान से उद्देश्य की एकता तथा उत्तरदायित्व की भावना आ जाती है जो किसी भी संगठन में प्राप्त करना काफी कठिन है। इससे संगठन की विभिन्न इकाइयाँ परस्पर एकीकृत सुसम्बद्ध (linked) रहती हैं। (ii) पदसोपान अधिकार तथा उत्तरदायित्व के उपविभाजन पर आधारित है। परन्तु इससे आदेश की एकता पर कोई आँच नहीं आती। (iii) यह श्रम के विभाजन तथा विशेषीकरण को उत्साह प्रदान कर प्रशासन में दक्षता बढ़ाता है। (iv) यह संगठन के हर पद की सापेक्षिक स्थिति (relative position) तथा उत्तरदायित्व की स्पष्ट व्याख्या करने में सहायता करता है। (v) इसमें नीति सम्बन्धी आवश्यक मामले तथा निर्देश उच्च स्तरों के लिए, देखरेख तथा नियन्त्रण का कार्य मध्य स्तरों के लिए तथा संचालन का कार्य साधारण कर्मचारियों पर छोड़ दिया जाता है। (vi) यह संगठन में किसी प्रकार के टकराव तथा खींचातान को रोकता है। (vii) इससे प्रत्येक फाइल संगठन में निर्धारित एवं उचित प्रणाली द्वारा नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे आती है। (viii) इससे कर्मचारियों में अनुशासन बढ़ता है। उन्हें अपने कर्त्तव्यों, अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का भली प्रकार ज्ञान होता है। (ix) इससे प्रशासनिक नेतृत्व का विकास होता है। (x) यह व्यावसायिक प्रत्यायोजन को आसान एवं स्पष्ट करती है इसी तरह पदोन्नति में भी पदसोपान सिद्धान्त सीधा लाभ प्रदान करता है।

पद सोपान सिद्धान्त की हानियाँ (Disadvantages of Principles of Hierarchy)

(i) यह प्रणाली संगठन के सदस्यों के बीच गतिशील सम्बन्धों को स्थापित करने के अनुकूल नहीं है। कोई भी संगठन केवल औपचारिक सिद्धान्तों पर नहीं चलता। (ii) इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रशासन के कार्य को निपटाने में अनावश्यक देर लगती है। प्रशासन लालफीताशाही का शिकार हो जाता है। (iii) पदसोपान पद्धति में अधिकांश आदेश ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। इस कारण निम्न स्तरों पर संगठन के उद्देश्यों तथा कार्य के प्रति रूचि व तत्परता नहीं रह पाती है। (iv) इससे प्रशासनिक संगठनों में लचीलापन नहीं रह पाता है क्योंकि हर कार्य सोपानबद्ध ढंग से सम्पादित होता है। (v) पदसोपान व्यवस्था की सफलता या असफलता, मुख्यतः संगठन के मुखिया की इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर करती है। यदि मुखिया अनौपचारिक सम्बन्धों के आधार पर संगठन में स्फूर्ति का संचार कर सके तो ही सफलता मिलती है। (vi) इस सिद्धान्त को संगठन में अपनाने से रूढ़िवादिता, कठोरता, नियमबद्धता तथा पहल न करने की भावनाएँ जन्म लेती हैं। भारत में भी स्थिति यह हो गई है कि

सरकारी फाइलों पर शीघ्र, अतिशीघ्र की पर्चियाँ (flags) लगानी पड़ती हैं। (vii) यह कार्मिकों में उच्च–निम्न का भेद उत्पन्न कर असहयोग एवं अलगाववादी प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं।

समाधान (Solution)

(i) **स्तर लांघकर –** चित्र के अनुसार यदि 'च' को 'घ' से काम है तो वह 'ड़' को लांघ कर सीधे ही 'घ' से चर्चा कर सकता है लेकिन ऐसा करना तब ही उपयुक्त है जबकि बीच के स्तर अर्थात् 'ड़' को विश्वास में ले लिया जाए। 'च' तथा 'घ' के वार्तालाप की जानकारी भी 'ड़' को दी जानी चाहिए।

(ii) **सेतु बाँधकर –** जब संगठन में दो समस्तरीय पदधारक कर्मचारियों को परस्पर संवाद स्थापित करना हो तो निर्धारित प्रक्रिया को अपनाए बिना सीधे ही आपस में चर्चा करे लें। अर्थात् 'च' को 'ट' से कार्य हेतु सम्पर्क करना हो तो वह 'ड़' तथा 'ञ' को विश्वास में ले।

हेनरी फेयोल ने इसे गेंगप्लांक (gangplank) नाम दिया है। गेंगप्लांक का शब्दकोषीय अर्थ है ''नाव के अंदर या बाहर चलने के लिए लकड़ी का उठाऊ तख्ता।''

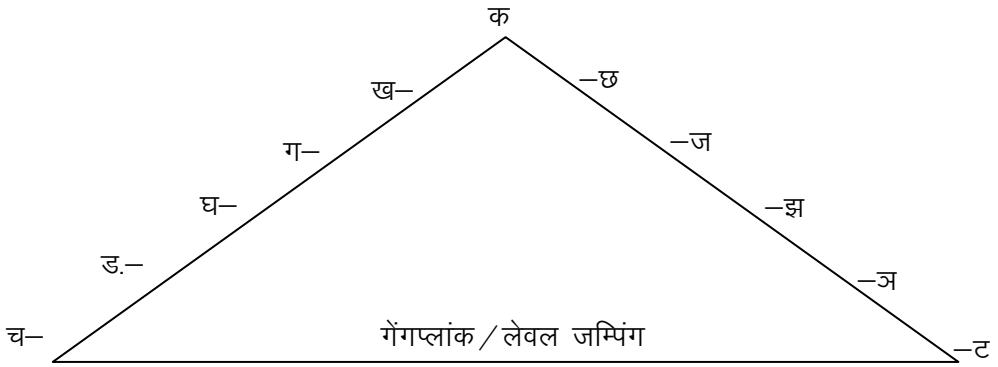

फेयोल के अनुसार संगठन के एक संभाग के अधिकारी को दूसरे संभाग के समस्तरीय अधिकारी से कार्य पड़ता हो तो गेंगप्लाक विधि का सहारा ले लेना चाहिए। मूने के अनुसार घर के गन्दे पानी के निकास के लिए नाली जरूरी है लेकिन कोई भी इन्सान इस नाली को घर समझ कर इसके अन्दर नहीं रहता है, उसी प्रकार सीढ़ीनुमा शृंखला को संचार का एकमात्र साधन नहीं मानना चाहिए। नीग्रो मानते हैं कि ''संगठन की औपचारिक संरचना तथा नियम ही प्रमुख नहीं हैं बल्कि अनौपचारिक संगठन तथा सम्बन्ध भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।'' तकनीकी परियोजनाओं में 'पंखाकृति संगठन' भी बनाए जाते हैं जहाँ एक कर्मचारी कई अलग अलग इकाइयों या पर्यवेक्षकों से जुड़ा होता है एवं उत्तरदायी भी होता है।

नियंत्रण का क्षेत्र (Span of Control)

किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाए रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, उच्चधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण का क्षेत्र, उस क्षमता या परिधि को प्रदर्शित करता है जो कि किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी में होती है अर्थात् एक अधिकारी एक समय में, कितने अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। नियंत्रण का क्षेत्र प्रायः नियंत्रण विस्तृति, प्रबन्ध का क्षेत्र, पर्यवेक्षण का क्षेत्र या सत्ता का क्षेत्र भी कहलाता है।

अर्थ (Meaning)

Control शब्द आदेश–निर्देश या नियंत्रित करने वाले अधिकार (सत्ता) का पर्याय है जबकि Span के कई अर्थ है –

1. स्मयावधि जो समाप्त होती है या निरन्तर चलती है।
2. एक किनारे से दूसरे किनारे (छोर) की दूरी जो कोई तय करता है।
3. किसी पुल या मेहराब के आधार की दूरी या भाग।
4. हाथ के अंगूठे और कनिष्ठा को फैलाने से बनने वाली दूरी या क्षेत्र।

यहाँ ''नियंत्रण का क्षेत्र'' में Span का अर्थ किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी के ध्यान के उस क्षेत्र से है जिसके अन्तर्गत वह अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। वी. ए. ग्रेकुनाज ने नियंत्रण के क्षेत्र को 'ध्यान का क्षेत्र' (Span of Attention) नाम दिया है।

अतः नियन्त्रण के क्षेत्र से तात्पर्य यह है कि एक उच्च अधिकारी के अधीन कितने कर्मचारी होने चाहिए जिन पर वह आसानी से नियन्त्रण रख सकता है। प्रशासनिक संगठन में नियन्त्रण के अभाव में कोई भी प्रशासक अपना कार्य सुचारू ढंग से नहीं कर सकता है। नियन्त्रण के क्षेत्र का सम्बन्ध इस बात से भी है कि अधिकारी के ध्यान के क्षेत्र (Span of Attention) का विस्तार कितना है। इसे मनोविज्ञान की भाषा में ध्यान का क्षेत्र तथा प्रशासन की परिभाषा में नियन्त्रण का क्षेत्र कहा जाता है। परिभाषित करते हुए कहा है कि ''नियन्त्रण का क्षेत्र किसी उद्यम के मुख्य कार्यपालक और उसके प्रमुख सहयोगी अधिकारियों के बीच सीधे एवं सामान्य संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. यह पदसोपान व्यवस्था तथा आदेश की एकता से सम्बन्धित सिद्धान्त है।
2. यह सिद्धान्त यह निश्चित करता है कि कोई अधिकारी कितने अधीनस्थों को निर्देश दे सकता है।
3. नियंत्रण का क्षेत्र, संगठन की संरचना, उद्देश्य, कार्य–प्रकृति, पर्यवेक्षक की क्षमता तथा अधीनस्थों के सहयोग इत्यादि पर निर्भर करता है।
4. यह सिद्ध है कि नियंत्रण का क्षेत्र जितना छोटा या सीमित होगा उतना ही नियंत्रण अधिक होगा तथा आदेश की एकता की क्रियान्विति अधिक होगी।
5. नियंत्रण का क्षेत्र विस्तृत या व्यापक होने पर नियंत्रण प्रक्रिया तुलनात्मक रूप से कम हो जाती है।

संगठन में पदसोपानात्मक व्यवस्था के अर्न्तगत अनेक छोटे–बड़े पदाधिकारी कार्य करते है। प्रत्येक कार्मिक का प्रत्यक्ष नियंत्रण उससे निकटस्थ उच्चाधिकारी करता है। इस सम्बन्ध में दो तथ्य महत्त्वपूर्ण है–

1. प्रत्येक स्तर पर कितने कार्मिक कार्यरत है जिनका नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण किये जाने की आवश्यकता है?
2. प्रत्येक उच्चाधिकारी अधिक से अधिक कितने अधीनस्थ कार्मिकों का सफलतापूर्वक (क्षमतापूर्वक) नियंत्रण कर सकता है?

वस्तुतः अभी तक कोई नियम या फार्मूला निर्धारित नही हुआ है जिसके अनुसार यह कहा जा सके कि इतने कार्मिकों का नियंत्रण कोई भी अधिकारी भलीभाँति कर सकता है। कारण स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएँ सीमित होती है तथा संगठन के उद्देश्य, कार्य की प्रकृति, स्थान, व्यक्तित्वं तथा समय इत्यादि भी अपना प्रभाव दिखाते है। अपने सैनिक अनुभव के आधार पर सर इयान हेमिल्टन ने बताया है कि एक

उच्चाधिकारी 3–4 अधीनस्थों का ही नियंत्रण कर सकता है जबकि ग्रेकुनाज यह संख्या 5–6 मानते है। हेनरी फेयोल भी मुख्य प्रबन्धक के अधीन 5–6 अधीनस्थो की ही संख्या उपयुक्त मानते है। एल. उरविक मानते है कि उच्च स्तर पर, जहाँ कार्य सरल तथा दैनन्दिन प्रकृति का होता है. पर 8–12 कार्मिकों का नियंत्रण किया जा सकता है। अमेरिकन प्रबन्ध संघ की गणना है कि एक उच्चाधिकारी अधिकतम 9 अधीनस्थों पर नियंत्रण रख सकता है। लॉर्ड हाल्डेन तथा ग्राहम वालास की राय में कोई भी मुख्य कार्यपालक किसी प्रकार का अतिरिक्त भार अनुभव किए बिना 10–12 अधीनस्थ अधिकारियों के कार्य का नियंत्रण कर सकता है। एल. उरविक का मानना है कि किसी अधिकारी के अधीन कार्यरत व्यक्तियों की संख्या में जितनी बढोतरी होती है उससे कहीं अधिक बढ़ोतरी अधीनस्थ व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्बन्धों में हो जाती है। उनके अनुसार ''यदि किसी अधिकारी के अधीन पहले से कार्यरत 5 अधीनस्थों में यदि एक और (छठा) जुड़ जाए तो कार्य में केवल 23 प्रतिशत अधिक सहायता मिलती है जबकि निरिक्षण या नियंत्रण के क्षेत्र में 100 प्रतिशत अर्थात् दुगुनी से भी अधिक वृद्धि हो जाएगी। सन् 1933 में वी.ए ग्रेकुनाज द्वारा प्रकाशित लेख Relationship in Organization में ग्रेकुनाज ने एक गणितीय सूत्र प्रतिपादित किया था। जिसके अनुसार अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि होने पर गुणात्मक तथा सामूहिक सम्बन्ध बढ़ते हैं। इसलिए सम्बन्धों की संख्या, घातीय अनुपात में बढ़ती है। इसे स्पष्ट करने के लिए ग्रेकुनाज ने यह गणितीय फार्मूला सुझाया था।

$$n\left[\frac{2n}{2}+n-1\right]$$

n = अधीनस्थों की संख्या

यदि ग्रेकुनाज के इस सूत्र को उनके द्वारा बताये गए सम्बन्धों के तीन प्रकारों में पृथक्–पृथक् विभक्त करें तो स्थिति इस प्रकार होगी–

1. प्रत्यक्ष एकल (Direct Singly) सम्बन्ध = n
2. प्रत्यक्ष समूह (Direct Group) सम्बन्ध = $n(n-1)$
3. आड़े तिरछे (Crosses) सम्बन्ध = $n[2^{(n-1)}-1]$

ग्रेकुनाज के इस गणितीय सूत्र की आलोचना करते हुए प्रो. थियो हैमेन कहते है कि ग्रेकुनाज का अध्ययन अनुभवयुक्त निरीक्षण पद आधारित नही है बल्कि शीर्ष प्रबन्धन के क्षेत्र में परिवर्तन करने से एक संगठन की क्या स्थिति होगी, इसका गणितीय प्रस्तुतीकरण है।

नियंत्रण के क्षेत्र को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Span of Control)

1. कार्य – यदि नियंत्रणकर्ता अधिकारी तथा अधीनस्थों का कार्य एक समान प्रकृति का हो तथा दैनन्दिन प्रकृति का हो तो सरलता से अधिक नियंत्रण हो सकता हैं।
2. व्यक्तित्व – यदि उच्चाधिकारी कुशल, मेधावी, चुस्त तथा लोकतांत्रिक प्रकृति का हो तो वह अधिक व्यक्तियों को नियंत्रित कर सकता है। यदि अधीनस्थ कामचोर, अकुशल, असहयोगी तथा जिद्दी हों तो उन पर नियंत्रण करना टेढ़ी खीर हो जाता है।
3. समय – इसका आशय संगठन की आयु से है। यदि संगठन बहुत पुराना तथा सुस्थापित प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं से युक्त है तो नियंत्रण की प्रक्रिया सरल बन जाती है तथा तुलनात्मक रूप से अधिक कार्मिकों को नियंत्रित किया जा सकता है। समय का दूसरा अर्थ अधीनस्थों तथा नियंत्रणकर्ता अधिकारी के सेवाकाल

या अनुभव से है।

4. स्थान – यदि अधीनस्थ कार्मिक तथा उनका उच्चाधिकारी एक ही कमरे में या एक ही भवन में हो तो अधिक व्यक्तियों का नियंत्रण किया जा सकता है किन्तु भौगोलिक दृष्टि से दूर–दूर कार्यरत अधीनस्थों का नियंत्रण कठिनता से होता है।
5. सत्ता का प्रत्यायोजन – कोई भी उच्चाधिकारी जो अपने अधीनस्थों को पर्याप्त सत्ता प्रदान करता है, किन्तु नियंत्रण की सत्ता अपने पास रखता है वह अधिक सफल रहता है। दूसरी ओर जो उच्चाधिकारी (सत्ता) के अनुरूप अधीनस्थों की जवाबदेयता सुनिश्चित नही करता है तो नियंत्रण करना मुश्किल हो जाता है।
6. नियंत्रण की विधि – यदि कार्य प्रगति की रिपोर्ट माँग पर ही नियंत्रण किया जा सकता है तो इससे बहुत से अधीनस्थों पर नियंत्रण हो सकता है लेकिन तकनीकी प्रकृति के कार्य में यदि प्रत्यक्ष अवलोकन करना है तो कम ही अधीनस्थों पर नियंत्रण किया जा सकता है।
7. पदसोपान के स्तर – यदि स्तरों की संख्या अधिक होगी तो नियंत्रण का क्षेत्र कम हो जाएगा तथा निरीक्षण अधिक होगा, साथ ही पर्यवेक्षकों (नियंत्रणकर्ताओं) की संख्या बढ़ानी पड़ेगी व्यय भी बढ़ जाएगा। संचार को भी कई स्तरों से गुजरना पड़ेगा, अत– निर्णय प्रक्रिया भी जटिल हो जाएगी। दुसरी ओर संगठन में स्तरों की संख्या कम होगी तो नियंत्रण का क्षेत्र विस्तृत हो जाएगा लेकिन कार्य तेज गति से हो सकेगा।

हरबर्ट साइमन ने नियंत्रण के क्षेत्र के इस सिद्धान्त की प्रत्यक्षतः आलोचना नहीं की है बल्कि इसमें व्याप्त दो विराधाभासी स्थितियों का वर्णन किया है–

1. प्रथम स्थिति – ऐसा माना जाता है कि नियंत्रण का क्षेत्र छोटा करने पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ती है, क्योंकि कोई भी उच्चाधिकारी अधिक प्रभावी ढ़ंग से निरीक्षण करने लगता है।
2. द्वितीय स्थिति – कुछ विद्वान् मानते है कि पदसोपान के स्तर घटा देने से कार्य तुलनात्मक रूप से शीघ्र सम्पादित होगा, अतः नियंत्रण का क्षेत्र बड़ा होकर भी प्रभावी है।

अर्थात् नियंत्रण का क्षेत्र छोटा करना तथा पदसोपान के स्तर को भी कम रखना दो परस्पर विरोधी बातें हैं।

परिवर्तित परिदृश्य (Changed Scenario)

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ प्रशासनिक प्रक्रियाओं में आए सामयिक परिवर्तनों से नियंत्रण के क्षेत्र की परम्परागत अवधारणा भी किंचित् धूमिल हुई है। कम्पयूटर एवं अन्य वैज्ञानिक उपकरणों जैसे टेलीफोन, फैक्स, ई–मेल, इन्टरनेट, पेजर, मोबाईल, स्वचालन, वीडियो, ऑडियो सिस्टम इत्यादि से एक अधिकारी अब अधिक अधीनस्थों पर सहजता से तथा शीघ्रता से नियंत्रण कर सकता है। विशेषज्ञों की भूमिका ने भी नियंत्रण के क्षेत्र को प्रभावित किया है। वस्तुतः नियंत्रण का क्षेत्र एक आवश्यक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त है। यदि इसकी परम्परागत मान्यताओं मे परिवर्तन आ रहा है तो यह इस सिद्धान्त की कमी नही बल्कि पर्यावरणीय प्रभावों का परिणाम है, अतः आज की स्थिति में ही इस सिद्धान्त का विश्लेषण करना चाहिए। इसीलिए पिफनर एवं शेरवुड कहते हैं कि इस सिद्धान्त में कतिपय लाभ ऐसे हैं जो इस प्रशासन की प्रत्येक पुस्तक में स्थान दिला देते हैं।

आदेश की एकता (Unity of Command)

आदेश या कमान या समादेश की एकता अर्थात् Unity of Command में 'कमांड' शब्द महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः Order, Instruct, Direct तथा Command एक समान प्रतीत होते है। Order सशक्त शब्द है जो प्राधिकारी की इस अपेक्षा से जुड़ा है कि अधीनस्थ उसका पालन करें। Instruct तथा Direct कार्य कराने के सम्बन्ध से सुझावत्मक स्थिति को

बताते है। जबकि Command शब्द मुख्यतः सैन्य प्रशासन में प्रयुक्त किया जाता है जहाँ नियंत्रण, अनुशासन तथा आज्ञाकारिता सर्वोच्च मानी जाती है, अतः आदेश की एकता उस सिद्धान्त का पर्याय है जिसमें कार्मिक को केवल एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त करना होता है।

यदि किसी संगठन में एक से अधिक आदेश देने वाले हों और उसे कार्यान्वित करने वाला कर्मचारी एक ही हो, तो ऐसी सम्भावना है कि एक ही कार्य के लिए उसे दो–तीन परस्पर विरोधी आदेश प्राप्त हो जाएँ। ऐसी स्थिति में अगर किसी एक आदेश का पालन अधीनस्थ कर्मचारी करता है तो अन्य उच्चाधिकारी इसे पक्षपात समझेंगे और अव्यवस्था फैल जाएगी। अतः आदेश एक होना चाहिए, एक व्यक्ति से मिलना चाहिए, अर्थात् आदेश की एकता होनी चाहिए। हेनरी फेयोल का भी मानना है कि 'आदेश की एकता के उल्लंघन से सत्ता कमजोर हो जाती है, अनुशासन खतरे में पड़ जाता है, व्यवस्था भंग हो जाती है और स्थायित्व संकट में पड़ जाता है। पिफनर और प्रेस्थस के अनुसार, ''नियन्त्रण की एकता की अवधारणा का तात्पर्य यह है कि किसी संगठन के प्रत्येक सदस्य को एक नेता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. ''पदसोपान व्यवस्था'' से जुडा हुआ है।
2. किसी भी कार्मिक को, एक ही निकटस्थ अधिकारी से आदेश मिलने चाहिए।
3. सत्ता, उत्तरदायित्व तथा नेतृत्व को स्पष्ट करता है।

आवश्यकता एवं लाभ (Need and Advantages)

1. इससे संगठन में सत्ता के सूत्रों के क्रम में स्पष्टता आ जाती है। प्रत्येक कार्मिक यह जानने लग जाता है कि उसे किससे आदेश प्राप्त होंगे या आदेश लेने हैं। स्पष्ट है कि वह आदेशकर्ता के प्रति उत्तरदायी भी होगा।
2. इससे कार्यो, आदेशों तथा नेतृत्व का दोहराव नहीं हो पाता है, अतः अनुशासनत एवं नियंत्रण भी अच्छे ढंग से किया जा सकता है।
3. आदेश की एकता से जोड़–तोड़ करने वाले, एक–दूसरे को भड़काने एवं भिड़ाने वाले कार्मिकों की गतिविधियों पर अंकुश लगता है। आदेश की एकता के अभाव में संगठन में न केवल अराजकता पनपती है बल्कि संगठन की गरिमा भी प्रभावित होती है।
4. संगठन में कार्यकुशलता तथा शीघ्रता बनाए रखने के लिए यह सिद्धान्त आवश्यक है।

इसीलिए हेनरी फेयोल कहते हैं .... एक ही व्यक्ति या विभाग के ऊपर जब दो अधिकारी सत्ता का उपयोग करते हैं तो गड़बड़ी उत्पन्न होने लगती है। ऐसी स्थिति के चलते रहने से अव्वस्था बढ़ती रहती है। अंततः इसके दो परिणाम होंगे – या तो एक अधिकारी का लोप जाएगा और संगठन पुनः स्वस्थ हो जाएगा अथवा संगठन विनाश की ओर अग्रसर होने लगेगा।

दोष (Disadvantages)

1. आदेश की एकता सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसे हर जगह, हर परिस्थिति में लागू किया जा सकता है। जैसे एक जूनियर इंजीनियर को पदसोपान के अनुसार जिलाधिकारी के आदेश को मानना चाहिए या एक्जीक्यूटिव इंजीनियर के आदेशों को मानना चाहिए।
2. इस सिद्धान्त के कमजोर पक्ष पर ध्यान आकृष्ट करते हुए सैकलर हडसन का कहना है कि ''एक व्यक्ति

एवं एक अधिकारी की पुरानी अवधारणा वर्तमान जटिल शासकीय परिस्थितियों में सत्य नही है। शासन में एक प्रशासक के कई स्वामी होते हैं, और वह उनमें से किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। एक से वह नीति, दूसरे से कर्मचारी, तीसरे से बजट और चौथे से प्रदाय एवं उपकरण सम्बन्धी आदेश प्राप्त करता है।''

3. इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए टेलर (Taylor) ने लिखा है कि इससे ''सैनिक प्रकार की चौधराहट'' का विकास होता है। एक कर्मचारी को अपने कार्य के सम्बन्ध में विभिन्न तकनीशियनों से निर्देश प्राप्त करने पड़ते हैं, इसके बिना एक कर्मचारी दक्ष नहीं हो सकता।

निर्देशन की एकता के सिद्धान्त या 'सेना जैसे फोरमैन' को एफ0 डब्ल्यू0 टेलर (F-W- Taylor), जिनको वैज्ञानिक प्रबन्ध का जन्मदाता कहा जाता है, ने रद्द कर दिया और इसके स्थान पर व्यावसायिक निरीक्षण और निर्देशन का सुझााव दिया जहाँ एक कार्मिक के कार्य का निरीक्षण आठ फोरमैन या निरीक्षकों द्वारा किया जायेगा जिनके नाम इस प्रकार हैं–(1) गुट नेता (The gang boss); (2) गति नेता (The speed boss); (3) इन्सपैक्टर्ज (The inspectors); (4) मरम्मत नेता (The repair boss); (5) कार्य की व्यवस्था और प्रणाली क्लर्क (The order fo work and route clerk); (6) शिक्षण कार्ड क्लर्क (The instruction card clerk) (7) समय और लागत क्लर्क (The time and cost clerk); तथा (8) कर्मशाला अनुशासनकर्ता (The shop disciplinarian)। इनमें से पहले चार तो स्वयं कर्मशाला या फैक्ट्री में ही होंगे और व्यक्तिगत तौर पर अपने कार्मिकों को उनके काम में सहायता करेंगे, प्रत्येक नेता केवल अपने ही कार्य या क्षेत्र में सहायता करेगा, और शेष चार नियोजन कमरे से काम करेंगे और वे अपने आदेशों और सूचनाओं को लिखकर भेजेंगे। टेलर की दृष्टि में इस व्यवस्था का मुख्य लाभ यह है कि निरीक्षकों में श्रम–विभाजन हो जाने से प्रत्येक कार्य में विशिष्ट और विशेषज्ञ का निरीक्षण प्राप्त होने में सावधा होती है। एक अकेला फोरमैन इन सभी कार्यों में विशेषज्ञ नहीं हो सकता।

वस्तुतः आदेश की एकता के दोषों तथा आलोचना के क्रम में गिनाए जाने वाले तर्क बहुत लचर–पचर है और अधिकांश आलोचकों ने आदेश, निर्देश तथा प्रार्थना को समानार्थक माना हुआ है। वस्तु स्थिति यह है कि आदेश की एकता, कमांड शब्द पर आधारित है। वास्तव में एक व्यक्ति को एक समय में आदेश तो एक ही उच्चाधिकारी देता है शेष केवल निर्देश जारी करते है। कोई भी कार्मिक कई उच्चाधिकारियों के प्रति प्रत्यक्षतः उत्तरदायी नहीं होता है। विकास प्रशासन, उद्योगों तथा तकनीकी क्षेत्रों में कई पर्यवेक्षक तथा अभिकरण मिलकर एक विशिष्ट कार्य करते है, अतः यह एक समन्वयात्मक प्रयास होता है न कि आदेश की अनेकता। अतः लूथर गुलिक की यह सलाह अधिक सटीक प्रतीत होती है कि–यदि इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जाए तो हो सकता है कि कुछ घातक परिणाम पैदा हो जाएँ, किन्तु यह परिणाम मतिभ्रम, अकार्यकुशलता तथा अनुत्तरदायित्व की तुलना में कुछ भी नहीं हैं, जो इस सिद्धान्त का उल्लंघन करने पर पैदा होंगे।

समन्वय (Co-ordination):– संगठनों की जटिलता और बढ़ते कार्यों एवं प्रक्रियाओं के कारण समन्वय एक बड़ी प्रशासनिक चुनौती बन गया है। इसीलिए जेम्स मूने, समन्वय को ''संगठन का प्रथम सिद्धान्त'' करार देते हैं। विशेषीकरण के कारण संगठनात्मक उलझने बढ़ी हैं और सरकारी तंत्र में लोक कल्याणकारी राज्य की पल्लवित होती अवधारणा ने नित्य नये विभागों तथा शासकीय कार्यों को जन्म दिया है। एक समान प्रकृति तथा क्षेत्र के कार्य, आज कई प्रकार के संगठनों तथा विभागों द्वारा निष्पादित किए जा रहे हैं। इसी प्रकार एक ही संगठन के भीतर बहुत सी गतिविधियाँ ऐसी होती हैं जो सामूहिक प्रयासों तथा सकारात्मक सहयोग की अपेक्षा करती हैं, अन्यथा कार्यों में दोहराव, अतिराव, प्रतिस्पर्द्धा तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं, जो संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा पैदा करती है। इसलिए विभिन्न कार्यों, व्यक्तियों तथा प्रक्रियाओं के मध्य तालमेल स्थापित करना पड़ताहै, जिसे समन्वय कहा जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions):- समन्वय का अर्थ है विभिन्न भागों का परस्पर और उनकी गतिविधियों तथा क्रियाओं का भी समय पर समायोजन, ताकि प्रत्येक भाग पूर्ण उत्पाद या सेवा के लिए अपना अधिकतम योगदान कर सके –एल0डी0 व्हाइट। समन्वय, निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नों का समकालीन संचालन (Synchronization) है, ताकि निष्पादन की उपयुक्त मात्रा, समय तथा संचालन की क्रियाओं में सामंजस्य एवं एकता स्थापित हो सके– जॉर्ज आर0 टैरी। समन्वय, कार्य के विभिन्न हिस्सों के बीच तालमेल स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण गतिविधि है– सेक्लर–हडसन। समन्वय किसी स्थिति की सभी तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध है– मेरी पार्कर फोलेट

समन्वय की विशेषताएँ (Features of Co-ordination) (i) यह एक सतत् प्रक्रिया है। (ii) संगठन के शीर्षस्थ अधिकारी का यह मुख्य दायित्व है कि वह विभिन्न इकाइयों, व्यक्तियों, कार्यों तथा प्रक्रियाओं में समन्वय स्थापित करे। (iii) यह व्यक्तिगत क्रिया न होकर सामूहिक सहयोग पर आधारित है। (iv) इसमें सहयोग को सकारात्मक तथा अर्थपूर्ण ढंग में एकीकृत किया जाता है। (v) समन्वय का उद्देश्य संगठन में व्यवस्था स्थापित करना तथा संगठन के लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्ति करना है। (vi) यह संगठन के आंतरिक एवं बाह्य दोनों परिस्थितियों में आवश्यक है।

समन्वय और सहयोग (Co-ordination and Co-operation)

समन्वय को कभी कभी गलती से सहयोग समझ लिया जाता है। दोनों का एक ही अर्थ नहीं होता। टैरी के शब्दों में सहयोग ''किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक व्यक्ति का दूसरे या दूसरों के साथ सामूहिक कार्य है।'' समन्वय सामूहिक कार्य से कहीं अधिक है, और इसका अर्थ है ''प्रयत्नों की समकालिकता'' अर्थात् प्रयत्न एक ही समय होने चाहिए।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि समन्वय और सहयोग विरोधी अवधाराणाएँ हैं। वस्तुतः समन्वय और सहयोग दोनों ही पूरक हैं। हैमेन के अनुसार ''यद्यपि सहयोग हमेशा सहायतापूर्ण रहता है और इसका अभाव समन्वय की प्रत्येक संभावना रोक सकता है, पर इसका अस्तित्व मात्र ही समन्वय का होना साबित नहीं करता। महत्त्व की दृष्टि से समन्वय सहयोग की अपेक्षा अधिक उच्च है।''

समन्वय के प्रकार (Types of Coordination)

समन्वय अनेक प्रकार का होता है (i) आन्तरिक तथा बाह्य अथवा कार्यात्मक तथा संरचनात्मक। (ii) रेखीय समन्वय तथा समतल समन्वय। आन्तरिक समन्वय संगठन द्वारा उसकी विभिन्न इकाइयों के बीच किया जाता है। इसके अतिरिकत, प्रत्येक संगठन अनेक बाहरी तत्वों जैसे लोकमत, दबाव समूह, हित समूह इत्यादि से भी प्रभावित होता है। इनके बीच जो समन्वय स्थापित किया जाता है, उसे बाह्य समन्वय कहते हैं।

रेखीय समन्वय (Vertical Co-ordination) से हमारा अभिप्राय समन्वय के उस रूप से है जो संगठन की इकाई के विभिन्न स्तरों के बीच स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक संगठन के निदेशक, उपनिदेशक, निरीक्षक, नियन्त्रक एवं ऐसे ही अन्य अधीनस्थों के मध्य स्थित समन्वय को ले सकते हैं। इस प्रकार समन्वय में पदसोपान एवं सत्ता का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

समतल समन्वय (Horizontal co-ordination) का अर्थ उस समन्वय से है जो प्रबन्ध के समान स्तरों पर किया जाता है। इस प्रकार के समन्वय में कर्मचारियों एवं अधिकारियों की स्वेच्छा का अधिक महत्त्व होता है। समान सतर वाले अधिकारियों के बीच समन्वय स्थापित करने की कुछ अपनी समस्याएँ हैं क्योंकि ये अधिकारी एक–दूसरे पर सत्तावान नहीं होते।

हर्बर्ट साइमन ने समन्वय को दो प्रकारों – प्रक्रियात्मक (Procedural) और वास्तविक (Substantive) में बाँटा है। प्रक्रियात्मक समन्वय, संगठन की संरचना की औपचारिक सम्बन्धों के साथ निहित रहता है, जबकि

वास्तविक समन्वय संगठन की गतिविधियों के साथ जुड़ा रहता है। जिस प्रकृति की गतिविधि होगी, वैसा ही समन्वय करना आवश्यक होगा।

समन्वय की आवश्यकता तथा महत्त्व (Need and Importance of Co-ordination)

(i) संघर्ष को दूर करना : संगठन में अलग योग्यताओं, रूचियों वाले लोगों के बीच तालमेल स्थापित करना तथा संगठन के लक्ष्यो को प्राप्त करना। (ii) सहयोग की भावना : कार्यों के बीच समन्वय के लिए सहयोग भी आवश्यक है। (iii) दोहरावकरण को रोकनाः जब संगठन के सदस्यों को यह मालूम नहीं होता कि दूसरे कर्मचारी क्या काम कर रहे हैं, तब दोहराव होने की संभावना बढ़ जाती है। (iv) साधनों का दुरूपयोग रोकना एवं एकांगिता : समन्वय के द्वारा साधनों के दुरूपयोग को रोककर किसी विषय को एकरूपता से देखा जाता है। (v) क्रमहीनता : संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक क्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात् ही आगे बढ़ा जा सकता है। (vi) कार्यकुशलता का स्तर उच्च करने हेतु : समन्वय के माध्यम से संगठन की गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं में सामंजस्य स्थापित किया जाता है जो परस्पर गहराई से जुड़ी हुई होती हैं। (vii) कार्यों में जटिलता तथा विशेषज्ञता : विज्ञान तथा प्रौद्यागिकी के विकास के साथ जटिलताएँ भी उत्पन्न हुई हैं। इसलिए समन्वय की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

समन्वय की विधियाँ (Methods of Co-ordination) (1) औपचारिक विधियाँ (Formal Methods): (i) नियोजन : इससे कष्टों और बाधाओं का पहले ही अनुमान लगाया जा सकता है और उन्हें दूर करने के उपाय ढूँढे जा सकते हैं। (ii) आदेश एवं निर्देशन : संगठन का प्रमुख अधिकारी आदेश, निर्देश एवं आज्ञा देकर समन्वय का कार्य कर सकता है। (iii) संगठनात्मक तरीके : प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में सम्मेलन, समितियाँ, गोष्ठियाँ, कर्मचारी वर्ग की समितियाँ आदि द्वारा। इसके अतिरिक्त, योजना आयोग, क्षेत्रीय परिषदें, राष्ट्रीय विकास परिषद्, मंत्रिमण्डल की समितियाँ, स्वयं प्रधानमंत्री आदि समन्वय के कार्य कर सकते हैं। (iv) अन्तर्विभागीय समितियाँ : अन्तर्विभागीय बैठकें तथा सम्मेलन भी बुलाये जा सकते हैं। राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, खाद्य मंत्रियों आदि का सम्मेलन बुलाया जा सकता है। जिले के विभिन्न विभागों में समन्वय का अच्छा उदाहरण स्वयं जिलाधीश है। (v) प्रक्रियाओं एवं रीतियों का प्रमाणीकरण : समन्वय स्थापित करने का माध्यम प्रपत्र, कार्य करने की नियमावली आदि भी है। (vi) वित्त मंत्रालय : इस विभाग के द्वारा बजट तैयार करवाया जाता है, यदि कोई विभाग विरोधी साधनों को अपनाता है तो वित्त मंत्रालय उसे धन न देकर रोक सकता है।

(2) अनौपचारिक विधियाँ (Informal Methods) (i) व्यक्ति सम्पर्क के द्वारा : अपने साथियों से क्लब अथवा होटलों में मिलकर विभागों की समस्याओं पर शांतिपूर्वक विचार कर सुलझा सकते हैं। (ii) भावुकता भरी अपीलें : इससे संगठन के सदस्यों में टोली की भावना जागृत होती है। (iii) अनुशासित दल–प्रणाली : भारत में जब केन्द्र और अधिकतर राज्यों में कांग्रेस सत्तारूढ़ थी तब सम्पूर्ण देश की नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों का दलगत अनुशासन के आधार पर समन्वय हो जाता था।

गुलिक ने पदसोपान, कमेटियों, तथा सचेत विचारों के माध्यम से समन्वय करने पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में समन्वय अचानक या संयोग से नहीं होता है बल्कि सोच विचार कर किया जाता है। हार्लन क्लीवलैंड द्वारा प्रतिपादित तनाव सिद्धान्त (Tension Theory) इस मान्यता पर आधारित है कि यदि किसी संगठन में लड़ाई–झगड़ा नहीं हो रहा है तो सुनियोजित ढंग से करवाना चाहिए। संघर्ष एवं तनाव के पश्चात् संगठन में स्वतः ही सहयोग एवं प्रेम बढ़ता है क्योंकि यह मानवीय प्रवृत्ति है।

समन्वय में बाधाएँ (Hindrances in Co-ordination)

लूथर गुलिक के अनुसार (i) व्यक्ति तथा जनता के व्यवहार के विषय में भविष्य सम्बन्धी अनिश्चितताएँ। (ii) नेतृत्व में ज्ञान, अनुभव, बुद्धिमानी तथा चरित्र का अभाव और उनके उलझे हुये तथा परस्पर विरोधी विचार एवं

उद्देश्य। (iii) प्रशासकीय कौशल तथा तकनीक का अभाव। (iv) अनेक विभिन्नताओं का समूह तथा मानवीय ज्ञान की कमी। (v) नवीन विचारों तथा कार्यक्रमों का विकास करने, उन पर मनन करने, परिपूर्ण बनाने तथा उन्हें अपनाने में व्यवस्थित तरीकों का अभाव आदि को शामिल किया है।

सेक्लर–हडसन ने (i) संगठनों का बढ़ता आकार एवं जटिलता। (ii) कर्मचारियों का व्यक्तित्व तथा राजनीतिक हस्तक्षेप। (iii) लोक प्रशासक का ज्ञान रखने वालों की कमी को शामिल किया है।

सुझाव (Suggestions): (i) पदसोपान की रचना पूर्ण रूप से स्पष्ट होनी चाहिए तथा यह पिरामिड की तरह लगता भी हो। (ii) संगठन के प्रत्येक कर्मचारी को अपनी इकाई के मुखिया के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। (iii) मुख्य विभागों के अधीन उपविभागों का गठन, उद्देश्य, कार्य तथा आवश्यकता के आधार पर तुरन्त किया जाए। (iv) जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक विभाग स्वावलम्बी हो तथा उनकी एकीकरण प्रक्रिया समन्वय की आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए। (v) विभागों की संख्या कम ही होनी चाहिए ताकि प्रभावी नियंत्रण रह सके। (vi) प्रबंध तथा समन्वय के लिए सामान्य और सहायक स्टाफ सेवाएँ गठित की जानी चाहिए। (vii) सूत्र और स्टाफ अभिकरणों के भेद को किसी व्यावहारिक नियम के अन्तर्गत पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

न्यमैन के सूझाव (i) संगठन का सरल ढाँचा (ii) सामंजस्यपूर्ण कार्यक्रम और नीतियाँ (iii) संचार के सुव्यवस्थित तरीके (iv) एच्छिक समन्वय की सहायता (v) पर्यवेक्षण द्वारा समन्वय शामिल हैं।

न्यूमैन कहते हैं कि समन्वय, किसी पर लादा नहीं जा सकता बल्कि इसमें तो स्वेच्छापूर्ण सहयोग आवश्यक है। अतः सभी कुछ नियमानुसार तथा व्यावहारिकता के अनुरूप लोचशील ढंग से चले तो समन्वय की स्थापना बहुत कठिन भी नहीं है।

सत्ता का प्रत्यायोजन या हस्तान्तरण (Delegation)

प्रत्यायोजन प्रशासकीय संगठन की अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विशेषता बन गई है। प्रत्यायोजन के अभाव में आज कोई भी प्रशासकीय संगठन भली प्रकार एवं सुगमतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। प्रत्यायोजन को हस्तान्तरण, प्रत्याधिकरण, अथवा अधीनस्थ प्रत्यायोजन इत्यादि कई नामों से जाना जाता है। प्रत्यायोजन का सामान्य अर्थ होता है किसी उच्च अधिकारी द्वारा किसी निम्न अधिकारी को विशिष्ट सत्ता प्रदान किया जाना। हालाँकि जो सत्ता वह अपने अधीनस्थों को सौंपता है उसका वैधानिक रूप से उत्तरदायित्व उस उच्चाधिकारी पर ही होता है। उच्चाधिकारी उन अधीनस्थों पर निरीक्षण, नियन्त्रण और पर्यवेक्षण का अधिकार स्वयं के पास रखता है, अर्थात् सत्ता को हस्तान्तरित करने वाला अधिकारी अन्तिम रूप से अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त नहीं हो पाता । यह हस्तान्तरण सदैव के लिए नहीं किया जाता बल्कि केवल कार्य कराने के लिए ही किया जाता है। वरिष्ठ अधिकारी सत्ता का हस्तान्तरण अपने अधीनस्थ अधिकारी को इसलिए करता है कि वह अपने विवेक का प्रयोग कर सके, निर्णय ले सके एवं कार्य को पूरा करा सके।

थियो हैमेन के शब्दों में – ''सत्ता के प्रत्यायोजन का अर्थ अधीनस्थों को निर्धारित सीमाओं में कार्य करने हेतु अधिकार प्रदान करने से है।''

अल्बर्ट के. विक्सबर्ग के अनुसार – जब संगठन के कुछ कार्य तथा इन कार्यो के संचालन हेतु आवश्यक अधिकार, एक या अधिक अधीनस्थ व्यक्तियों को सौपे जाते है, तो इसे प्रत्यायोजन कहा जाता है।''

डगलस सी. बसिल के शब्दो में –''प्रत्यायोजन में अधिकार प्रदान करना या कुछ परिभाषित क्षेत्रों में निर्णयन की शक्ति देना तथा सौंपे गए कार्यों के निष्पादन के लिए अधीनस्थों को उत्तरदायी बनाना सम्मिलित है।

जार्ज आर. टरी के अनुसार – ''प्रत्यायोजन का अर्थ है, संगठन की इस इकाई से दूसरी इकाई या एक व्यक्ति द्वारा, दूसरे व्यक्ति को अधिकार सौंप देना।''

टैरी के अनुसार, प्रत्यायोजन, तीन वर्गों में बॉटा गया है।

1. नीचे की ओर (अधोगामी) – जब उच्चाधिकारी, अपने से निम्नाधिकारी को अधिकार सौंपता है।
2. ऊपर की ओर (ऊर्ध्वगामी) – उदाहरण के लिए किसी कम्पनी के शेयरधारक निदेशक मंडल को अधिकार दे देते हैं।
3. समस्तरीय (क्षैतिजिक) – जब समान स्तर या समान पद के अधिकारी को या इकाई को अधिकार सौंप दिए जाते है।

दूसरी ओर मेरी पार्कर फोलेट मानती हैं कि प्रशासनिक सिद्धान्तों में प्रत्यायोजन एक कल्पना भर है क्योंकि सत्ता, कार्य से जुड़ी है। जो कोई कार्य सम्पन्न करता है, उसी में सत्ता निहित हो जाती है चाहे इसे संगठन पसंद करें या न करें साथ ही फोलेट यह भी मानती है कि प्रत्यायोजन संगठन की व्यावहारिकता की माँग है अर्थात् किसी सत्ताधारी पर निर्भर रहने वाली प्रक्रिया नहीं है। बहुत से विद्वान् प्रत्यायोजन तथा हस्तान्रण (Transfer) में अन्तर मानते हुए स्पष्ट करते है कि हस्तान्तरण में सत्ता के साथ–साथ उत्तरदायित्व भी प्रत्यायोजित हो जाते है अर्थात् प्रत्यायोजनकर्ता पूर्णतः मुक्त हो जाता है। हस्तान्तरण एक प्रकार का स्थायी प्रत्यायोजन या अन्तिम निर्णय है जबकि प्रत्यायोजन आंशिक तथा अस्थायी प्रकृति का पर्याय है।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. प्रत्यायोजन में किसी अधीनस्थ या संगठन की किसी इकाई को एक सीमा तक यह अधिकार दिया जाता है कि वह ढ़ंग से कार्य करे। अधिकार प्राप्त करने वाला, अधिकार सौंपने वाले से कुछ निर्देश एवं शर्ते भी प्राप्त करता है अर्थात् अधीनस्थ व्यक्ति की सीमाएँ, उच्चाधिकारी द्वारा निर्धारित कर दी जाती है।
2. प्रत्यायोजन का दोहरा स्वरूप होता है अर्थात प्रत्यायोजन अपने कार्य एवं अधिकार, दूसरों को सौंपता अवश्य है किन्तु बहुत से अधिकार अपने पास रखता भी है।
3. प्रत्यायोजन में निरिक्षण तथा नियंत्रण के अधिकार तथा अन्तिम उत्तरदायित्व सदैव प्रत्यायोजक का बना रहता है।
4. एक बार प्रत्यायोजन हो जाने के पश्चात् वह स्थायी रूप से प्रत्यायोजित नहीं रहता है जबकि उसमें संशोधन किया जा सकता है; उसे घटाया या बढ़ाया जा सकता है।
5. कोई भी अधिकारी या अभिकरण वही सत्ता प्रत्यायोजित कर सकता है, जो उसके पास होती है।
6. कोई भी व्यक्ति, अपनी सम्पूर्ण सत्ता का प्रत्यायोजन नहीं कर सकता है बल्कि आंशिक मात्रा में ही प्रत्यायोजन होता है।
7. प्रत्यायोजन एक कला है। किस अधिकारी को, कब और कितनी सत्ता देनी है तथा किस प्रकार नियंत्रण स्थापित किया जाना है, इसका निर्धारण प्रत्यायोजन करने वाला अधिकारी ही करता है।

प्रत्यायोजन की आवश्यकता

1. व्यवस्थापिका के कर्त्तव्यों में वृद्धि – लोक प्रशासन की बारीकियों को समझने हेतु तथा लोक प्रशासन की विभिन्न योजनाओं को लागू करने के लिए असंख्य कानून बनाने का न तो विधानमण्डल के पास साधन है, न ही समय। अतः वह कानून बनाने, योजना बनाने, तथा प्रशासन से सम्बद्ध विभिन्न नियमों और विनियमों को बनाने का अधिकार कार्यपालिका को ही सौंप देती है।

2. कार्यो का बोझ कम करने के लिए – सरकारी प्रशासन पर इतने कार्य बढ़ गए हैं कि वह किसी भी विभाग का कार्य किसी एक अधिकारी के द्वारा सम्पन्न नही करा सकता। पदसोपान पर स्थित विभिन्न प्राधिकारों में सत्ता का हस्तान्तरण आवश्यक हो जाता है ताकि कार्यो के बोझ को हल्का किया जा सके।

3. भौगोलिक क्षेत्रों के दृष्टिकोण से – लोक–कल्याणकारी राज्य की भावना की पूर्ति तब तक सम्भव नहीं हो पाएगी जब तक कि देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैले हुए विभिन्न कस्बों, शहरों और गाँवो तक विविध सुविधाओं को न पहुँचाया जाए. अतः भौगोलिक क्षेत्रों को देखते हुए सेवाओं के विस्तार के लिए शक्तियों का हस्तान्तरण आवश्यक है।

4. कार्यकुशलता के विकास के लिए – कार्यकुशलता कर्मचारियों के आत्मविश्वास से उत्पन्न होती है आत्मविश्वास उनमें तभी आ पाता है जब उन्हें कार्य करने और निर्णय लेने का अवसर मिले और यह अवसर तभी मिल सकता है जब उनमें सत्ता का प्रत्यायोजन हो अर्थात् उन्हें अधिकार एवं सत्ता सौपे जाएँ।

5. समन्वय की दृष्टि से प्रत्यायोजन – देशों की सामान्य योजना, प्रशासन और सामान्य नीतियों का कार्यान्वयन सभी के लिए एक साथ होता है। ये योजनाएँ उच्चस्तरीय प्रशासकों द्वारा निर्मित और निर्धारित की जाती है। सामान्य प्रकृति की ये योजनाएँ स्थानीय और क्षेत्रीय समस्याओं के साथ मेल नही खाती है। उन स्थानीय और क्षेत्रीय समस्याओं के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए प्रत्यायोजन आवश्यक हो जाता हैं।

6. प्रशिक्षण का अवसर प्रदान करने हेतु – जब कभी भी अधीनस्थ कर्मचारी के ऊपर प्रत्यायोजन के फलस्वरूप नवीन उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं तो वे पूरे उत्तरदायित्व की भावना के साथ काम करते है और इस कार्य से उन्हें प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है।

7. निर्देशन, नियन्त्रण और पर्यवेक्षण की सुविधा के लिए – सत्ता का प्रत्यायोजन योजनाबद्ध ढ़ंग से होता हैं इसमें यह बात स्पष्टरूप से निर्धारित कर दी जाती है कि किसे कौन–सा कार्य कितनी सीमाओं मे रहकर पूरा करना है जो उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ को सत्ता प्रत्यायोजित करता है, उसके पास उस कार्य से सम्बन्धित निदेशन, नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के अधिकार बने रहते हैं।

8. व्यय पर नियन्त्रण हेतु – अगर किसी कार्य के लिए किसी अधिकारी को दिल्ली से प्रत्येक सप्ताह पटना आना पड़े तो इससे बेहतर और मितव्ययतापूर्ण कदम यही होगा कि एक अधिकारी को सत्ता प्रत्यायोजित कर पटना में ही नियुक्त कर दिया जाय।

9. शीघ्र निर्णय के लिए – कभी–कभी प्रशासकीय संगठनों में कुछ ऐसी आपातकालीन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसके लिए आपातकालीन निर्णय की आवश्यकता होती है, अपने मुख्यालय से आदेश प्राप्त करने में इतना वक्त लग जाता है कि बहुत देर हो चुकी होती है, अतः ऐसी परिस्थिति में प्रत्यायोजित अधिकारी शीघ्र निर्णय लेने में समर्थ होते हैं।

10. लोक–सम्पर्क में सुविधा – सत्ता के प्रत्यायोजन के फलस्वरूप निचले स्तर के अधीनस्थ अधिकारी तथा देश के विभिन्न कोनों में फैले कर्मचारी आम जनता के साथ सीधे सम्पर्क में आते हैं।

सत्ता के प्रत्यायोजन के रूप

1. पूर्ण या आंशिक प्रत्यायोजन – उदाहरण के रूप में, जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किसी प्रतिनिधिमण्डल को भेजा जाता है तो उसे शासन के द्वारा पूर्ण सत्ता प्रत्यायोजित कर दी जाती है। उस प्रतिनिधिमण्डल के द्वारा लिया गया निर्णय शासन को पूर्णतः मान्य होता है। प्रतिनिधिमण्डल जो भी निर्णय देता है वह शासन की ओर से ही देता है। आमतौर पर देश के आन्तरिक प्रशासकीय संगठन में आंशिक

सत्ता का ही प्रत्यायोजन किया जाता है अर्थात् उच्च अधिकारी थोड़ी–सी सत्ता और थोड़ा–सा कार्य अपने अधीनस्थ को उत्तरदायित्वों के साथ सौंप देता है।

2. लिखित अथवा मौखिक प्रत्यायोजन – जिस सत्ता का प्रत्यायोजन लिखित रूप में आदेश के द्वारा, लिखित पत्र के द्वारा अथवा लिखित अधिसूचना के द्वारा हो, उसे लिखित प्रत्यायोजन कहते हैं। इसके विपरीत, सत्ता प्रत्यायोजन यदि मौखिक रूप से अथवा टेलीफोन पर दिया गया हो, तो उसे अलिखित अथवा मौखिक प्रत्यायोजन माना जाता है। प्रत्यायोजन का विधिक स्वरूप मौखिक प्रत्यायोजन नहीं है।

3. औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रत्यायोजन – औपचारिक प्रत्यायोजन वह हस्तान्तरण है जिसमें प्रत्यायोजन संगठन की अधिकार सीमाओं के अनुसार किया जाता है। यह प्रत्यायोजन अधिसूचना के माध्यम से निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार होता है जो प्रत्यायोजन संगठन के नियम के अनुसार अधिसूचना के द्वारा नही होता तथा जिसमें निर्धारित प्रक्रिया की अवहेलना की जाती है, उसे अनौपचारिक प्रत्यायोजन कहते है।

4. सशर्त अथवा शर्तहीन प्रत्यायोजन – जैसे अमेरिका के राष्ट्रपति को सन्धियाँ करने का अधिकार है मगर शर्त यही है कि उन सन्धियों का अनुमोदन उसे सीनेट से कराना पड़ेगा। शर्तहीन प्रत्यायोजन में कोई शर्त नहीं रखी जाती है तथा अधीनस्थ अधिकारी को निर्णय लेने और कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है।

5. प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन – सत्ताधारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी को सत्ता सीधे सौंपता है तो सत्ता का हस्तान्तरण यहाँ प्रत्यक्ष रूप से होता है। हस्तान्तरण में इन दोनो के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता है। अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन के अन्तर्गत शक्ति पहले एक मध्यस्थ को सौंपी जाती है और यह मध्यस्थ फिर शक्ति उसको सौंपता है, जैसे अमेरिका में राष्ट्रपति को जो शक्ति प्राप्त है वह अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचक – मण्डल के माध्यम से जनता ने उसे सौंपी है।

6. सामान्य अथवा विशिष्ट प्रत्यायोजन – सामान्य प्रकृति के कार्यो एवं उत्तरदायित्वों के लिए जो प्रत्यायोजन सामान्य रूप से किये जाते हें, उन्हें सामान्य प्रत्यायोजन कहा जाता है लेकिन जब किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए विशिष्ट ढंग से शक्ति का प्रत्यायोजन किया जाता है, तो उसे विशेष प्रत्यायोजन कहते हैं।

7. सरल या जटिल प्रत्यायोजन – प्रायः छोटे–छोटे संगठनों में उच्च अधिकारी अपने कार्यो के बोझ को हल्का करने के लिए अपने अधीनस्थों का सहयोग लेते है और सहयोग लेने के स्वार्थ में उनमें सरल रूप से बिना किसी जटिलता के सत्ता को प्रत्यायोजित कर देते है। दूसरी तरफ जटिल प्रक्रिया की आवश्यकता बड़े संगठनों मे होती है जहाँ कार्यबोझ और अधिकार–क्षेत्र काफी विकसित और जटिल होते है। इसमें सत्ता का प्रत्यायोजन यूँ ही आसानी से नहीं हो जाता बल्कि प्रत्यायोजन की जटिल निर्धारित प्रतिक्रियाओ से होकर गुजरना पड़ता है।

प्रत्यायोजन की सीमाएँ एवं बाधाएँ

सीमाएँ (Limitations)

कोई भी उच्च अभिकरण या अधिकारी निम्नांकित कार्य प्रत्यायोजित नहीं कर सकता है–

1. निकटस्थ अधीनस्थों का पर्यवेक्षण
2. वित्तीय स्वीकृति तथा नियंत्रण के अधिकार
3. नवीन नीति तथा योजना–स्वीकृति

4. कानून बनाने की शक्तियाँ
5. उच्च पदों पर नियुक्ति
6. निकटस्थ अधीनस्थों के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनवाई के अधिकार
7. अत्यन्त गुप्त निर्णय तथा उच्च स्तरीय कूटनीति
8. जो अधिकार स्वयं के पास नही है
9. अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधिकांश मामले।

बाधाएँः– संगठनात्मक बाधाएँ

1. कुछ संगठनों में प्रत्यायोजन हेतु उन स्थापित तरीकों तथा प्रक्रियाओं का अभाव हो।
2. समन्वय प्रक्रिया तथा सम्पर्क प्रणाली का अभाव हो।
3. पदों, अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के क्रम में अस्पष्टता हो।
4. संविधान, कानून तथा संगठन के उद्देश्य एवं नियम
5. गम्भीर परिस्थितियों में प्रत्यायोजन नहीं किया जाता है।

कार्मिक बाधाएँ

पिफनर ने निम्नलिखित मानवीय कारणों को प्रत्यायोजन में बाधाएँ माना है–

1. प्रत्यायोजन करने वाले में –
    1. पदसोपान में उच्च स्थिति में पहुँच चुके पदाधिकारियों में सामान्य से अधिक अहं होता है।
    2. उन्हें यह डर रहता है कि दूसरे व्यक्ति सही निर्णय नहीं कर पाएँगे
    3. उन्हें यह भी भय है कि प्रभावशाली अधीनस्थों को अधिकार देने से वफादारी कम हो जाएगी।
    4. दृढ़, अति उत्साही तथा शीघ्रता से कार्य करने वाले उच्चाधिकारी, अधीनस्थों की धीमी गति तथा अनिश्चितता से धैर्य खो बैठते हैं।
    5. लोक प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण भी उच्चाधिकारी प्रत्याजोजन नहीं कर पाते हे।
    6. मानव की अधिनायकवादी प्रवृत्तियाँ।
    7. सफल नेतृत्व तथा प्रत्यायोजन में परस्पर तालमेल नहीं है। दूसरों को अपने नेतृत्व से आकर्षित करने वाले प्रत्यायोजन कम ही करते है।

अधीनस्थों की अड़चनें –

1. उन्हें आलोचना का भय सताता है।
2. अच्छा कार्य करने के लिए आवश्यक जानकारी तथा संसाधनों का अभाव है।
3. आत्मविश्वास की कमी रहती है।
4. पहल–क्षमता और गतिशीलता की कमी है।

5. क्षमता से अधिक कार्य मिलने पर बोझ–सा लगता है।
6. ब्हुत से अधीनस्थ 'करने से पूछना भला' ही अच्छा समझते है।
7. पदोन्नति के अवसरों तथा अभिप्रेरणाओं का अभाव रहता है।

प्रभावी प्रत्यायोजन के लिए आवश्यक बातें

पिफनर ने प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाएँ है –

1. दायित्वों का निर्वाह करने में सक्षम अधीनस्थों का चयन करें।
2. प्रत्येक कार्मिक की जिम्मेदारियाँ स्पष्ट करें।
3. प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में उचित प्रशिक्षण दें।
4. संगठन की सामान्य नीतियाँ निश्चित करके उनका प्रचार करें।
5. क्रियात्मक तथा व्यवस्था सम्बन्धी प्रक्रियाओं का अधिक से अधिक मानकीकरण करने की चेष्टा करें।
6. कार्य विश्लेषण, संगठनात्मक अध्ययन, बजट, नियोजन, कार्य प्रगति अध्ययन, व्यवस्था और प्रक्रियाओं के सरलीकरण जैस प्रबन्धन नियोजन के कार्य निरन्तर करते रहें।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण (Centralization and Decentralization)

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण दो विपरीतार्थी अवधारणाएँ है। सदियों से विश्वभर की शासन व्यवस्थाएँ इसी प्रश्न से जूझती रही हैं कि शासन सत्ता का केन्द्रीकरण किया जाए अथवा विकेन्द्रीकरण। दानों अवधारणाओं की अपनी–अपनी विशेषताएँ, गुण तथा दोष है। एक ओर नियोजित अर्थव्यवस्था, सशक्त तथा प्रभावशाली प्रतिरक्षा और राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता केन्द्रीकरण पर बल देती है तो दूसरी ओर जनसहयोग से लोकतंत्र की स्थापना का आश्वासन एवं क्षेत्रीय स्वायत्तता की बढ़ती माँग विकेन्द्रीकरण का समर्थन करती है। यही कारण है कि अधिकांश देशों में न तो पूर्ण केन्द्रीकरण अपनाया गया है और न ही विशुद्ध विकेन्द्रीकरण प्रणाली में रूचि दिखाई गई है। भारत मे भी जहाँ योजना आयोग, केन्द्रीकरण की प्रतीक संस्था है तो पंचायती राज संस्थाएँ लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पर्याय है। केन्द्रीकरण, वह अवधारणा है जो प्रत्यायोजन के विपरीत है।

अर्थ (Meaning)

हेनरी फेयोलः– जिससे अधीनस्थों के महत्त्व में वृद्धि हो वह विकेन्द्रीकरण होता है तथा जो अधीनस्थों के महत्त्व को घटाए वह केन्द्रीकरण कहलाता है।

एल. डी. व्हाईट :– प्रशासन के निम्न तल से उच्च तल की ओर प्रशासकीय सत्ता के हस्तान्तरण की प्रक्रिया को केन्द्रीकरण कहते है तथा ठीक इसके विपरीत (उच्च से निम्न की ओर) व्यवस्था 'विकेन्द्रीकरण' कहलाती है।

हेराल्ड कूंटज :– केन्द्रीकरण का प्रयोग उन प्रवृत्तियों का विवरण देने के लिए किया जाता है जो सत्ता के छितराव (विकेन्द्रीकरण) से भिन्न है..... बहुधा यह विभागीय गतिविधियों, सेवा, प्रभागों या एक ही विभाग में केन्द्रीकृत समान या विशिष्ट गतिविधियों की ओर संकेत करता है लेकिन जब प्रबन्ध के पक्ष के रूप में केन्द्रीकरण की चर्चा की जाती है तो उसका अर्थ होता है – सत्ता को सौंपना या रोके रखना तथा निर्णय लेने में सत्ता का छितराव या जमाव होना।

जे. एल. मैसी :– विकेन्द्रीकरण, संगठनात्मक अवधारणा के रूप में, निर्णय को संगठन के निम्न स्तर पर ले जाने की क्रिया है।

जे. सी. चार्ल्सवर्थ :– विकेन्द्रीकरण का प्रमुख तत्व निर्णय – निर्धारण समबन्धी कार्यो का प्रत्यायोजन है।

फेसलर – कोई क्षेत्रीय सेवा केन्द्रीकरण की ओर झुकी है या विकेन्द्रीकरण की ओर, इसका अनुमान उन मामलों के महत्त्व पर निर्भर करता है जिनके सम्बन्ध में क्षेत्रीय अधिकारियों को निर्णय लेने का अधिकार होता है, न कि मुख्यालय द्वारा निर्णय किए जाने वाले मामलों पर।

सामान्यतया विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट करने के लिए पाँच बिन्दुओं को विश्लेषित किया जाता है–

1. अधीनस्थ व्यक्तियों तथ इकाइयों को स्वेच्छा से कार्य करने तथा निर्णय लेने की पर्याप्त शक्तियाँ सौंपी जाएँ। (प्रशासनिक पक्ष)
2. मुख्यालय द्वारा कम–से–कम नियंत्रण किया जाए। (प्रशासनिक पक्ष)
3. निर्वाचित निकायों के हाथों में अधिकाधिक शक्तियाँ सौपी जाएँ तथा प्रशासन में जनसहभागिता स्पष्ट दिखे। (राजनीतिक पक्ष)
4. जनता के निकट तथा मुख्यालय से दूर स्वतंत्र क्षेत्रीय इकाइयों की स्थापना हो। (भौगोलिक पक्ष)
5. विभिन्न नीतियों, कार्यो, नियमों के सम्बन्ध मे अधीनस्थ इकाइयों को पूर्ण स्वायत्तता मिले।

विकेन्द्रीकरण के प्रकार (Types of Decentralization) :– प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण का आशय प्रशासनिक संगठन के अन्दर अधीनस्थ विभागों या इकाइयों की सत्ता प्रदान करना है। स्पष्ट है यह प्रत्यायोजन का अधिक सुधरा हुआ तथा लोकतांत्रिक स्वरूप है।

1. ऊर्ध्वाधर – कोई विभाग अपनी प्रशासनिक संरचना के किसी अनुभाग को कार्य में पूर्ण स्वतंत्र कर दे।
2. क्षैतिजिक – यह समस्तरीय विकेन्द्रीकरण प्रतीत होता है। जैसे – समझौता समितियों, आयोगों तथा न्यायाधिकरणों की स्थापना करना।
3. क्षेत्रिय (भौगोलिक) – जैसे विभिन्न कार्यालयों के संभागीय, आंचलिक, क्षेत्रीय तथा जिला स्तरीय कार्यालय देश भर में स्थित हैं।
4. कार्यात्मक – जब कोई मंत्रालय या विभाग या संगठन अपने किसी कार्य को आधार बनाकर पुथक् से उस कार्य को सम्पादित करने की इकाई बना देता है।

राजनीतिक विकेन्द्रीकरण में प्रशासन के बजाय शासन (सरकार) के स्तरों पर सत्ता विभक्त कर दी जाती है। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का सीधा सम्बन्ध लोकतांत्रिक मूल्यों, जनभावनाओं तथा विभिन्न दबावों से है। भारत में कार्यरत पंचायती राज संस्थाएँ, राजनीतिक (लोकतांत्रिक) विकेन्द्रीकरण का सटीक उदाहरण है।

विकेन्द्रीकरण के गुण (Merits of Decentralization)

1. जन भावनाओं के अनुकूल– स्थानीय समस्याओं को वास्तविक एवं भली–भाँति समझने, उनका मूल्यांकन करने तथा उनके प्रभावी समाधान के लिए आवश्यक निर्णय लेने हेतु विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।
2. लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार– आधुनिक प्रशासनिक संगठनों में नेतृत्व की लोकतांत्रिक शैली को ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। विकेन्द्रीकरण शासन व्यवस्था में जनता और कार्मिक दोनों ही रूचि लेकर कार्य करते है।
3. कार्य का शीघ्र निस्तारण– विकेन्द्रीकरण में चूँकि अधीनस्थ या क्षेत्रीय या स्थानीय संस्थाएँ अपने निर्धारित अधिकार क्षेत्र में निर्णय करने और कार्यवाही करने को स्वतंत्र होती है, अतः कार्य में विलम्ब नहीं होता।

4. प्रशासन में लोचशीलता– विकेन्द्रीकरण के कारण प्रशासन में लचीलापन आता है, अतः तुरंत निर्णय और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार संशोधन या अनुकूलन भी किया जा सकता है।
5. नवाचारों को प्रोत्साहन– विकास प्रशासन की आधुनिक अवधारणा में विकेन्द्रीकरण एक आवश्यकता है क्योंकि निचले स्तर पर अनुभव की जाने वाली समस्याएँ तथा उनका स्थानीय समाधान ही विकास कार्यो को गति देता है।
6. आत्मविश्वास में वृद्धि– अधीनस्थों को स्वावलम्बी बनाने, अभिप्रेरित करने तथा योग्यता सिद्ध करने के अवसर देने हेतु एकमात्र प्रभावी उपाय विकेन्द्रीकरण ही है।
7. नीति एवं क्रियान्वयन में सामंजस्य– यदि विकेन्द्रीकरण के माध्यम से नीतियाँ एवं योजनाएँ स्थानीय स्तर पर ही बनें तथा क्रियान्वित हों तो असफलता की दर काफी कम की जा सकती है।

विकेन्द्रीकरण के दोष (Demerits of Decentralization)

1. पूर्ण विकेन्द्रीकरण सम्भव नहीं– रक्षा, बजट, लेखांकन, वैदेशिक सम्बन्ध, गुप्तचर सेवाएँ, राष्ट्रीय महत्त्व के गम्भीर विषयों तथा प्रशासनिक नियंत्रण से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित गतिविधियों का विकेन्द्रीकरण करना आत्मघाती कदम माना जाता है।
2. नियंत्रण एवं समन्वय में बाधाएँ– विकेन्द्रीकरण के कारण अधीनस्थ संस्थाएँ या अभिकरण स्वायत्तता का लाभ तो उठाती हैं किन्तु इससे संगठन की विभिन्न प्रशासनिक क्रियाओं के मध्य समन्वय जटिल हो जाता है। जितने अधिक निर्णय–स्तर होंगे उतनी ही उलझनें संगठन में उत्पन्न होंगी।
3. एकरूपता का अभाव– प्रत्येक इकाई अपने ढ़ंग से नीति, कानून तथा कार्यक्रम निर्मित एवं संचालित करती है। एकरूपता के अभाव में कई बार कानूनी जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती है।
4. अपव्यय– विकेन्द्रीकरण में योजनाओं, कार्यक्रमों तथा नीतियों का दोहराव भी हो सकता है। लेखांकन, बजट तथा नियंत्रण सम्बन्धी प्रावधान थिथिल होने से अधिक अपव्यय भी होते देखा गया है।
5. स्थानीय दुष्प्रभाव– विकेन्द्रीकरण पर स्थानीय राजनीति, जाति, वर्ग–भेद, संघर्ष, ऐतिहासिक सन्दर्भ तथा पक्षपात स्पष्ट प्रभाव डालते हैं।

केन्द्रीकरण के गुण (Merits of Centralization)

1. प्रभावी नियंत्रण एवं समन्वय– विलियम आर. वैसेट ने कहा है– एकाकी व्यक्ति– नियंत्रण सर्वश्रेष्ठ है, यदि वह व्यक्ति इतना सक्षम हो कि प्रत्येक कार्य की व्यवस्था कर सके।
2. एकरूपता की स्थापना– सभी इकाइयाँ एक नेतृत्व के अधीन कार्य करती है, अतः स्पष्ट है उन्हें एक जैसा व्यवहार एवं कार्य संचालन बनाए रखना होता है। नीतियों, नियमों तथा कार्यक्रमों में भिन्नता न होने के कारण विवाद भी कम होत हैं।
3. मितव्ययता– मर्विन कोहन का मानना है कि पुनरावृत्ति तथा अतिराव की समस्या से मुक्ति पाने के कारण मितव्ययता भी आती है।
4. राष्ट्रीय हितों की रक्षा– राष्ट्रीय महत्त्व के गम्भीर विषयों जैसे नियोजन, रक्षा, वित्त, करारोपण, कर एकत्रण, वैदेशिक सम्बन्ध, लेखांकन इत्यादि के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी समस्याएँ हैं जिनका समाधान केवल केन्द्रीकरण के द्वारा किया जा सकता है, जैसे परिवार नियोजन, जनसंख्या–नियंत्रण, मद्यपान निषेध,

आतंकवाद का सामना, नशीली दवा–व्यापार नियंत्रण, साम्प्रदायिकता एवं क्षेत्रवाद से मुक्ति तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता से जुड़े अन्य विवादित मुद्दे।

5. नेतृत्व की प्रभावशीलता– जो व्यक्ति अपनी योग्यता, प्रतिष्ठा तथा संगठात्मक कार्यो को जोड़कर देखना एवं कुछ कर दिखाना चाहते हैं, उनको केन्द्रीकरण ही रास आता है। विश्व के अधिकांश लोकप्रिय तथा प्रभावशाली राजनेता केन्द्रीकरण के ही समर्थक रहे हैं।

केन्द्रीकरण के दोष (Demerits of Centralization)

1. अलांकतांत्रिक– आधुनिक लोक कल्याणकारी तथा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में केन्द्रीकरण प्रवृत्तियाँ अलोकतांत्रिक मानी जाती है। केन्द्रीकरण को परमपरावाद तथा राजशाही व्यवस्थाओं की विरासत भी माना जाता है क्योंकि केन्द्रीकरण में एकल नेतृत्व तथा शीर्षस्तरीय निर्णय महत्वपूर्ण हो जाते हैं।
2. कठोर एवं अलोकप्रिय– अधिनस्थों का स्वभाव केवल उच्च सत्ता के आदेशों को अनमने ढ़ंग से एवं आधा–अधूरा क्रियान्वित करने का हो जाता है। इस प्रवृत्ति में अनावश्यक रूप से लालफीताशाही पनपती है।
3. कार्य में विलम्ब– केन्द्रीकरण में क्षेत्रीय या अधीनस्थ संस्थाएँ अपनी–अपनी समस्याएँ निरन्तर उच्च सत्ता की ओर प्रेषित करती रहती हैं। परिणामस्वरूप उच्च सत्ता के पास कार्य का ढेर हो जाता है।
4. अधीनस्थों में कुंठा एवं हताशा– केन्द्रीकरण के कारण संगठन में द्वितीय पंक्ति के प्रबन्धक तैयार नहीं हो पाते हैं। यदि निम्नस्तरीय कार्मिकों को कभी निर्णय लेने तथा नियम बनाने का अवसर ही नहीं दिया जाएगा तो भला उनमें उमंग, पहला क्षमता, मनोबल तथा आत्मविश्वास कैसे उत्पन्न होगा?
5. अन्य दोष
    1. केन्द्रीकरण के कारण स्थानीय संसाधनों का सदुपयोग नहीं होता है।
    2. इसमें जनसहभागिता तथा प्रेरणाओं का अभाव रहता है।
    3. नवाचारों तथा अनुकूलनशीलता को प्रोत्साहन नहीं मिलता है।
    4. संकठकालीन परिस्थितियों में केन्द्रीकरण से भारी क्षति भी उठानी पड़ सकती है।

केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण में से किसे अपनाया जाए, इसका निर्धारण करना मुश्किल है। विलोबी का निष्कर्ष है कि– ''इन दोनों में से किसी एक अवधारणा को सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है बल्कि यह सब किए जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा अन्य विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि कौन सी व्यवस्था किसके लिए उपयुक्त है।''

4. अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संगठन का अर्थ व परिभाषा समझाइए।
2. संगठन के आधार प्रक्रिया के पक्ष व विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. औपचारिक संगठन किसे कहते हैं?
4. पदसोपान का अर्थ व परिभाषा समझाइए।
5. नियंत्रण को प्रभावित करने वाले कोई चार कारक बताइए।
6. संगठन की सिद्धांत आदेश के एकता के क्या–क्या लाभ है?
7. प्रत्यायोजन तथा विकेन्द्रीयकरण में क्या अंतर है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संगठन की अवधारणा तथा आधारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. अनौपचारिक संगठन का अर्थ, विशेषताएं, लाभ तथा हानि को विस्तार से समझाइए।
3. संगठन के सिद्धांत 'पदसोपान' का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई–3

संगठन की संरचना (Structue of organization)

1. मुख्य कार्यकारी (Chief Executive)

मुख्य कार्यकारीः परिभाषा, कार्य और कार्यकारी के प्रकार।

सरकार का दूसरा लेकिन सबसे शक्तिशाली अंग कार्यकारी है। यह वह अंग है जो विधायिका और सरकार की नीतियों द्वारा पारित कानूनों को लागू करता है। कल्याणकारी राज्य के उदय ने राज्य के कार्यों में और कार्यपालिका की वास्तविकता में जबरदस्त वृद्धि की है। आम उपयोग में लोग सरकार के साथ कार्यकारी की पहचान करते हैं। समकालीन समय में, हर राज्य में कार्यपालिका की शक्ति और भूमिका में बड़ी वृद्धि हुई है।

'कार्यकारी' शब्द को इसके व्यापक और संकीर्ण दोनों रूपों में परिभाषित किया गया है। अपने व्यापक रूप में, इसका अर्थ सभी पदाधिकारियों, राजनीतिक शक्ति–धारकों (राजनीतिक कार्यकारी) और स्थायी सिविल सेवकों से लिया जाता है जो कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन का कार्य करते हैं और राज्य का प्रशासन चलाते हैं। इसके संकीर्ण रूप में, इसका मतलब केवल कार्यकारी प्रमुखों (मंत्रियों यानी राजनीतिक कार्यकारी) से है, जो सरकारी विभागों के प्रमुख हैं, नीतियों को बनाते हैं और सरकार के कानूनों और नीतियों के कार्यान्वयन का पर्यवेक्षण करते हैं। संकीर्ण रूप में, सिविल सेवा और इसके प्रशासनिक कार्य कार्यकारी के दायरे में शामिल नहीं हैं। परंपरागत रूप से, केवल संकीर्ण अर्थ राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किए जाते थे। हालाँकि, आधुनिक समय में, कार्यकारी को इसके व्यापक रूप में परिभाषित किया गया है और यह राजनीतिक कार्यपालिका के साथ–साथ सिविल सेवा दोनों को कवर करता है।

परिभाषाः "एक व्यापक और सामूहिक अर्थ में, कार्यकारी अंग सभी पदाधिकारियों और एजेंसियों की समग्रता या समग्रता को गले लगाते हैं जो राज्य की इच्छा के निष्पादन से संबंधित होते हैं जैसा कि कानून के रूप में तैयार और व्यक्त किया गया है।

"अपने व्यापक अर्थ में, कार्यकारी विभाग में विधायी या न्यायिक क्षमता में कार्य करने वाले लोगों को छोड़कर सभी सरकारी अधिकारी होते हैं। इसमें सरकार की सभी एजेंसियां शामिल हैं जो राज्यों के निष्पादन से संबंधित हैं जैसा कि कानून के संदर्भ में व्यक्त किया जाएगा।

इन दो परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि कार्यकारी में राजनीतिक कार्यकारी (मंत्री और राज्य के प्रमुख) और गैर–राजनीतिक स्थायी कार्यकारी (सिविल सेवा या नौकरशाही) शामिल हैं। राजनीतिक कार्यपालिका नीतियों को बनाने और यह सुनिश्चित करने का कार्य करती है कि सभी कानून सरकार के सभी विभागों द्वारा ठीक से लागू किए जाएं। स्थायी कार्यकारी यानी नौकरशाही सिविल सेवा दिन–प्रतिदिन प्रशासन और सरकारी विभागों में काम करती है। यह राजनीतिक कार्यपालिका की देखरेख और नियंत्रण में काम करता है।

कार्यकारी के दो भागः राजनीतिक कार्यकारी और स्थायी कार्यकारीः

(i) राजनीतिक कार्यकारी (मंत्री):– इसमें राज्य के कार्यकारी प्रमुख होते हैं और कार्यकारी विभागों के अन्य प्रमुख मंत्री होते हैं। मंत्री राजनीतिक नेता हैं। वे ज्यादातर लोगों के प्रतिनिधि चुने जाते हैं और जनता के सामने अपने सभी फैसलों और नीतियों के लिए जिम्मेदार होते हैं। लगभग 5 वर्षों के निश्चित कार्यकाल के लिए राजनीतिक कार्यकारी कार्य। यह इस अर्थ में एक अस्थायी कार्यकारी के रूप में कार्य करता है कि यह हर चुनाव के बाद बदलता है। एक कार्यकाल पूरा करने के बाद, मंत्रियों को फिर से चुनाव लड़ना पड़ता है। वे फिर से तभी मंत्री बन सकते हैं, जब वे जिस पार्टी से होते हैं, वह बहुमत वाली पार्टी के रूप में सत्ता में लौटती है। मंत्री शौकीनों, गैर–विशेषज्ञों और गैर–पेशेवरों हैं। उनका कार्य नीतियों को तैयार करना और इन नीतियों और कानूनों को विधानमंडल से अनुमोदित कराना है। इसके बाद राज्य की इन नीतियों और कानूनों को सिविल सेवकों द्वारा लागू किया जाता है, जो राजनीतिक कार्यपालिका के नियंत्रण में काम करते हैं। राजनीतिक कार्यकारी सरकार का प्रमुख होता है। प्रत्येक मंत्री एक विभाग या सरकार के कुछ प्रमुख होते हैं।

(ii) गैर–राजनीतिक या स्थायी कार्यकारी (सिविल सेवक):– इसमें सिविल सेवक (नौकरशाही) सबसे निचले से लेकर उच्चतम स्तर तक के होते हैं। यह सरकारी विभागों में काम करके दिन प्रतिदिन प्रशासन का काम करता है। सिविल सेवक राजनीतिक रूप से तटस्थ हैं। वे किसी भी राजनीतिक दल के प्रति निष्ठा नहीं रखते हैं। उनका काम सरकार के कानूनों और नीतियों को बिना किसी राजनीतिक विचार के पूरा करना है। वे विशेष रूप से शिक्षित और प्रशिक्षित व्यक्ति हैं। वे विशेषज्ञ और पेशेवर हैं। वे विशेषज्ञ को सलाह और राय देने के साथ–साथ राजनीतिक कार्यकारी को डेटा एकत्र, वर्गीकृत और प्रस्तुत करते हैं, जिसके आधार पर बाद में सभी निर्णय लेते हैं। एक बार नियुक्त होने के बाद, सिविल सेवक सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक पद पर बने रहते हैं, आमतौर पर 55 या 60 वर्ष की आयु तक। उन्हें नियमित और निश्चित वेतन मिलता है और उच्च और निम्न रिश्तों में पदानुक्रमित रूप से व्यवस्थित होते हैं।

मुख्य कार्यकारी के कार्यः–

1. कानूनों का प्रवर्तनः– कार्यकारी का प्राथमिक कार्य कानूनों को लागू करना और राज्य में कानून व्यवस्था बनाए रखना है। जब भी कानून का उल्लंघन होता है, तो कार्यपालिका की जिम्मेदारी होती है कि उल्लंघन को प्लग करें और अपराधियों को बुक करें। प्रत्येक सरकारी विभाग अपने काम से संबंधित कानूनों और नीतियों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है। राज्य में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए, कार्यकारी पुलिस बल का आयोजन और रखरखाव करता है।

2. नियुक्ति करने वाले कार्यः– सभी प्रमुख नियुक्तियां मुख्य कार्यकारी द्वारा की जाती हैं। उदाहरण के लिए, भारत के राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। राजदूत, भारत के महाधिवक्ता, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य, राज्यों के राज्यपाल आदि। इसी तरह, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बहुत बड़ी संख्या में महत्वपूर्ण नियुक्तियां करते हैं। सभी सचिव जो विभिन्न सरकारी विभागों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और अन्य संघीय न्यायालयों, राज्यों में संघीय अधिकारियों आदि के प्रमुख हैं, अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। हालांकि, ऐसी सभी नियुक्तियों के लिए अमेरिकी सीनेट (ऊपरी सदन अमेरिकी कांग्रेस यानी संसद) की मंजूरी की आवश्यकता होती है।

सिविल सेवा के सदस्यों को भी मुख्य कार्यकारी द्वारा नियुक्त किया जाता है। यह, आमतौर पर, सेवा भर्ती आयोग की सिफारिश पर किया जाता है। भारत में, संघ लोक सेवा आयोग प्रतिवर्ष अखिल भारतीय सेवाओं, केंद्रीय सेवाओं और संबद्ध सेवाओं के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करता है। यह इन संवर्गों की नियुक्ति के लिए

योग्यता, उम्मीदवारों पर भर्ती करता है। नियुक्तियां मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा यूपीएससी की सिफारिशों के अनुसार की जाती हैं। इसी तरह की प्रथा लगभग सभी राज्यों में व्याप्त है। इस तरह की नियुक्ति करना कार्यकारी का एक कार्य है।

3. संधि–निर्माण कार्यः– यह तय करना कार्यकारी की जिम्मेदारी है कि किन देशों के साथ कौन सी संधियों पर हस्ताक्षर किए जाएं। कार्यपालिका अंर्तराष्ट्रीय कानून द्वारा परिभाषित प्रक्रिया के अनुसार और राज्य के संविधान के प्रावधानों के अनुसार संधियों पर बातचीत करती है। प्रत्येक संधि पर कार्यकारी के एक सदस्य द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं। अधिकांश संधियों में राज्य की विधायिका द्वारा अनुसमर्थन की भी आवश्यकता होती है। इसके द्वारा हस्ताक्षरित संधियों के लिए विधायी अनुमोदन को सुरक्षित करना कार्यकारी की जिम्मेदारी है।

4. रक्षा, युद्ध और शांति कार्यः– राज्य के प्रमुख कार्यों में से एक देश की एकता और अखंडता की रक्षा और संरक्षण करना है और बाहरी आक्रमण या युद्ध की स्थिति में इसकी रक्षा करना है। यह कार्य करना कार्यपालिका की जिम्मेदारी है। राज्य की रक्षा के लिए सेना को संगठित करना, युद्ध की तैयारी करना और उससे लड़ना, यदि यह आवश्यक हो जाता है, और हर युद्ध के बाद शांति समझौता करने और हस्ताक्षर करने के लिए, कार्यकारी द्वारा किए गए कार्य हैं। कार्यकारी देश की सुरक्षा के लिए खतरे की प्रकृति का अंतिम न्यायाधीश है। राज्य की सुरक्षा और अखंडता के हित में ऐसे सभी कदम उठाने की प्रमुख जिम्मेदारी है। राज्य का मुख्य कार्यकारी राज्य के सशस्त्र बलों का सर्वोच्च कमांडर भी होता है।

5. विदेश नीति–निर्माण और विदेशी संबंधों का संचालनः– बढ़ती वैश्विक निर्भरता के इस युग में, यह राज्य की विदेश नीति तैयार करने और विदेशी संबंधों का संचालन करने के लिए सरकार के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक बन गया है। यह कार्य कार्यकारी द्वारा भी किया जाता है। कार्यकारी राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों को तैयार करता है और प्राथमिकताओं को ठीक करता है। यह पहले राष्ट्र की विदेश नीति तैयार करता है और फिर इसे राष्ट्रीय हित के निर्धारित लक्ष्यों को हासिल करने के लिए लागू करता है। कार्यकारी राज्य के राजदूतों को अन्य राज्यों में नियुक्त करता है।

6. नीति–निर्माणः– आधुनिक कल्याणकारी राज्य को अपने लोगों के सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक विकास को सुरक्षित रखने के लिए बड़ी संख्या में कार्य करने हैं। इसके लिए नीतियां तैयार करना, अल्पकालिक और दीर्घकालिक योजनाएँ तैयार करना और इन्हें लागू करना है। राज्य की सभी कार्रवाइयाँ निशचित नीतियों और योजनाओं द्वारा निर्देशित होती हैं। यह कार्यकारी है जो नीति–निर्माण और विकासात्मक योजना का कार्य करता है। ये कार्यकारी के दो सबसे महत्वपूर्ण कार्य हैं, क्योंकि इनके द्वारा राज्य अपने लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के अपने उद्देश्य को पूरा करता है।

7. कानून बनाने से संबंधित कार्यः– कानून बनाना मुख्य रूप से विधायिका का कार्य है। हालांकि, कार्यकारी भी कानून बनाने में एक भूमिका निभाता है। इस क्षेत्र में भी कार्यपालिका की भूमिका छलांग और सीमा से बढ़ रही है। एक संसदीय प्रणाली में, मंत्री विधायिका के सदस्य भी होते हैं और वे कानून बनाने में अग्रणी भूमिका निभाते हैं। विधान के अधिकांश विधेयक विधायिका में पेश किए गए और उनके द्वारा संचालित किए गए हैं। विधायिका का अधिकांश समय सरकारी विधेयकों को पारित करने में व्यतीत होता है। विधायिका द्वारा पारित विधेयक राज्य के प्रमुख द्वारा हस्ताक्षर किए जाने के बाद ही कानून बन जाते हैं।

8. विधि विधान के तहत कानून बनानाः– प्रत्यायोजित विधान की प्रणाली ने कार्यपालिका की कानून बनाने वाली भूमिका को काफी बढ़ा दिया है। इस प्रणाली के तहत, विधायिका अपनी कानून बनाने की कुछ शक्तियों को कार्यपालिका को सौंपती है। कार्यपालिका फिर इन शक्तियों के आधार पर नियम बनाती है। कार्यकारी द्वारा बनाए गए प्रत्यायोजित विधान की मात्रा विधायिका द्वारा पारित कानूनों से बाहर होती है।

9. वित्तीय कार्यः– यह विधायिका है जो सभी वित्त का संरक्षक है। इसमें कर लगाने या कम करने या समाप्त करने की शक्ति है। हालांकि, वास्तविक व्यवहार में, कार्यकारी कई वित्तीय कार्यों का अभ्यास करता है। इसके लिए बजट तैयार करने की जिम्मेदारी है। यह नए कर लगाने या कर संरचना और प्रशासन में बदलाव का प्रस्ताव करता है। यह विधायिका द्वारा स्वीकृत धन को एकत्र करता है और खर्च करता है। कार्यपालिका उन तरीकों और साधनों को तय करती है जिनके माध्यम से धन एकत्र करना और खर्च करना है। यह सभी आर्थिक नीतियों और योजनाओं को तैयार करता है। यह माल के उत्पादन और वितरण, धन की आपूर्ति, कीमतों और निर्यात और आयात को विनियमित करने के लिए उपयुक्त उपाय करता है। यह विदेशी ऋण का अनुबंध करता है, विदेशी सहायता पर बातचीत करता है और राज्य की वित्तीय विश्वसनीयता को बनाए रखता है।

10. कुछ अर्ध–न्यायिक कार्यः– न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए कार्यकारी द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति को सबसे अच्छी विधि माना जाता है। लगभग सभी लोकतांत्रिक प्रणालियों में, मुख्य कार्यकारी के पास न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति होती है। इसके अलावा, उसे अपराधियों को क्षमा, दमन और माफी देने का अधिकार है। प्रशासनिक अधिनिर्णय की प्रणाली के तहत, कार्यकारी एजेंसियों के पास प्रशासनिक गतिविधि के विशेष क्षेत्रों से जुड़े मामलों की सुनवाई और निर्णय लेने की शक्ति होती है।

11. ग्रथियों और सम्मानों का अनुदानः– कार्यकारिणी का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य लोगों को राष्ट्र के लिए उनकी मेधावी सेवाओं की मान्यता में उपाधि और सम्मान प्रदान करना है। ऐसे व्यक्ति जो अपने संबंधित क्षेत्रों में कला, विज्ञान, साहित्य आदि के क्षेत्र में सराहनीय कार्य करते हैं, उन्हें कार्यकारी द्वारा उपाधि प्रदान की जाती है। यह ऐसे रक्षा कर्मीयों को भी उपाधि प्रदान करता है जो युद्ध या शांति के दौरान अनुकरणीय साहस और कर्तव्य के प्रति समर्पण दिखाते हैं। यहां तक कि आम नागरिकों को समाज के लिए उनके सराहनीय काम के लिए सम्मान दिया जाता है। इस संबंध में सभी निर्णय कार्यपालिका द्वारा लिए जाते हैं। ये कार्यकारी द्वारा किए गए प्रमुख कार्य हैं। कार्यकारी वास्तव में सरकार का सबसे शक्तिशाली अंग बनकर उभरा है।

मुख्य कार्यकारी के प्रकारः

1. नाममात्र/टाइटेनियम और वास्तविक कार्यकारी अधिकारीः– नाममात्रः अनुमापी और वास्तविक अधिकारियों के बीच अंतर केवल सरकार की संसदीय प्रणाली में किया जाता है। इसमें, राज्य का प्रमुख, राष्ट्रपति या सम्राट, नाममात्र की कार्यपालिका है और प्रधान मंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद ही वास्तविक कार्यकारी है। सभी शक्तियाँ कानूनी रूप से नाममात्र की कार्यपालिका की शक्तियाँ हैं लेकिन व्यवहार में ये वास्तविक कार्यपालिका द्वारा प्रयोग की जाती हैं। नाममात्र की कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं है क्योंकि ये वास्तविक कार्यकारी द्वारा इसके नाम पर किए गए हैं। नाममात्र की कार्यकारिणी के सभी कार्यों के लिए वास्तविक कार्यकारी जिम्मेदार होता है। नाममात्र कार्यकारी कार्यकारी का औपचारिक और गरिमापूर्ण हिस्सा है, जबकि वास्तविक कार्यकारी इसका शक्तिशाली हिस्सा है।

2. वंशानुगत और निर्वाचित कार्यकारी अधिकारीः– जब कार्यकारी वंशानुगत उत्तराधिकार के कानून द्वारा कार्यालय ग्रहण करता है, तो इसे वंशानुगत कार्यकारी कहा जाता है। जब कार्यपालिका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लोगों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए या यहां तक कि जीवन के लिए चुनी जाती है, तो इसे निर्वाचित कार्यकारी कहा जाता है। ब्रिटेन, जापान और मलेशिया में वंशानुगत मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं। भारत, अमरीका, जर्मनी और कई अन्य राज्यों में मुख्य कार्यकारी अधिकारी चुने जाते हैं।

3. एकल और बहुवचन कार्यकारीः– जब सभी कार्यपालिका शक्तियाँ एक ही अधिकारी : नेता के हाथों में होती हैं, तो इसे एकल कार्यकारी कहा जाता है। भारत, ब्रिटेन, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस और कई अन्य राज्यों में एकल

अधिकारी हैं। भारत में, सभी कार्यकारी शक्तियां भारत के राष्ट्रपति के पास हैं। इसी तरह अमेरिकी संविधान के तहत, कार्यकारी शक्तियां संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के पास हैं। जब कार्यकारी शक्तियों को व्यक्तियों के समूह या किसी समिति : परिषद : आयोग में निहित किया जाता है और सामूहिक रूप से इस आयोग : परिषद के सभी सदस्यों द्वारा प्रयोग किया जाता है, तो कार्यकारी को बहुवचन कार्यकारी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैंड में सभी कार्यकारी अधिकार संघीय परिषद को दिए गए हैं, जिसमें सात सदस्य हैं। सभी सदस्य सामूहिक रूप से सभी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

4. संसदीय और राष्ट्रपति के कार्यकारी:– संसदीय और राष्ट्रपति के अधिकारियों के बीच का अंतर विधायिका और कार्यपालिका के बीच संबंधों के आधार पर बनाया जाता है।

संसदीय कार्यकारी में है:

(i) विधायिका और कार्यकारी के बीच घनिष्ठ संबंध और कार्यपालिका के सदस्य भी विधायिका के सदस्य हैं, (ii) राजनीतिक कार्यकारिणी के सदस्य विधायिका के समक्ष व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से जिम्मेदार होते हैं, (iii) राजनीतिक कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित नहीं है क्योंकि यह विधायिका द्वारा किसी भी समय हटाया जा सकता है, (iv) विधायिका को कार्यपालिका द्वारा भंग किया जा सकता है।

एक राष्ट्रपति कार्यकारिणी में:

(i) कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्तियों का पृथक्करणय, (ii) दो अंगों की सदस्यता असंगत है अर्थात् एक का सदस्य दूसरे का सदस्य नहीं हो सकता है, (iii) कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं है, (iv) न तो घुल सकता है और न ही दूसरे को हटा सकता है।

संसदीय अधिकारी भारत, ब्रिटेन, कनाडा, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया और कई अन्य राज्यों में कार्य कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, कार्यकारी राष्ट्रपति है। फ्रांस में कार्यकारी के इन दो रूपों का मिश्रण है।

2. सूत्र, स्टाफ एवं सहायक अभिकरण
(Line, Staff and Auxilliary Agencies)

'स्टाफ' तथा 'सूत्र' दोनों शब्द सैनिक संगठन से लिए गए हैं। सूत्र अधिकारी सेना को युद्ध स्थल में कमाण्ड करते हैं, अर्थात् वह सेना को आदेश देते तथा उसका संचालन करते हैं। सूत्र इकाइयों का कार्य संगठन का मुख्य उद्देश्य अर्थात् युद्ध में विजय प्राप्त करना होता है। परन्तु युद्ध भूमि में सेनाओं को भोजन, दवाइयाँ, अस्त्र–शस्त्र तथा गोला–बारूद आदि भी पहुँचाना अति आवश्यक होता है। यह कार्य सेना की स्टाफ इकाइयों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। लोक प्रशासन में स्टाफ तथा सूत्र अभिकरणों का अर्थ सैनिक प्रशासन में इनके कार्य को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

सूत्र अभिकरण (Line Agencies)

वे अभिकरण जो मुख्य उद्देश्य के आधार पर स्थापित किये जाते हैं तथा जिनका सम्बन्ध लोगों के लिए सेवा की व्यवस्था करना है, सूत्र अभिकरण कहलाते हैं। सूत्र अभिकरणों में :– (i) विभाग, (ii) निगम, तथा (iii) स्वतन्त्र विनियामक आयोग आदि शामिल हैं।

ऐलन के अनुसार रेखापद का आशय संस्था के उन पदों अथवा तत्त्वों से है जो उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा करने के उत्तरदायी होते हैं। स्टाफ अथवा सहायक का आशय उन अभिकरणों से है जो परामर्श एवं सहायता प्रदान करते हैं।

व्हाइट के अनुसार, सूत्र अधिकरण उन प्राथमिक उद्देश्यों से सम्बन्धित होते हैं जिनके लिए शासन स्थापित किया जाता है।'' लेपावस्की के मतानुसार, ''सूत्र संगठन ... में सत्ता तथा उत्तरदायित्व की रेखाएं ऊपर से नीचे तक फैली होती हैं।'' इसलिए इन्हें 'लाइन' या 'सूत्र' की संज्ञा दी गई है।

इस प्रकार सूत्र का तात्पर्य किसी संस्था में उन पदों एवं तत्त्वों से है जो संस्था के मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक उत्तरदायित्व एवं अधिकार वहन करते हैं तथा उसके लिए उत्तरदायी होते हैं। सूत्र अधिकारियों को स्टाफ अभिकरण द्वारा दिए गए सुझावों को मानने व न मानने का अधिकार होता है और किसी विभाग में सूत्र व स्टाफ कर्मचारियों में किसी प्रकार का संघर्ष होने पर प्रशासनिक निर्णय देने का अधिकार वरिष्ठ सूत्र अधिकारी का होता है।

सूत्र संबंध के निम्नलिखित तीन रूप होते हैं –

(i) सूत्र : आदेश–शृंखला के रूप में (Line as a Chian of Command) सूत्र का सामान्य उद्देश्य में लगे हुये प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी के साथ आदर्श संबंध होता है। अधिकार प्रत्यायोजन क्रिया द्वारा इस संबंध का जन्म होता है। जब भी कोई अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारी द्वारा प्रत्यायोजित कार्य को पूरा करने का उत्तरदायित्व एवं अधिकार स्वीकार करता है, तो उस संबंध में वरिष्ठ अधिकारी के समस्त आदेशों का पालन करना उसका कर्त्तव्य हो जाता है। प्रत्येक संस्था में सर्वोच्च अधिकारी से लेकर छोटे अधिकारी तक प्रत्येक प्रत्यायोजन व पुनः प्रत्यायोजन क्रिया द्वारा आदेश शृंखला में बंधा रहता है।

(ii) सूत्र : संप्रेषण–शृंखला के रूप में (Line as a Chain of Communication) चेस्टर बर्नार्ड के मतानुसार सूत्र का प्रमुख महत्त्व संप्रेषण–शृंखला के रूप से है। किसी संस्था में विभिन्न कार्यों में समन्वय, अधिकार प्रत्यायोजन तथा प्रबन्ध की समस्त प्रक्रियाओं का आधार संप्रेषण ही होता है। प्रभावी सम्प्रेषण के लिये मूल व्यवस्था में दो विशेषतायें होनी चाहिए (i) स्पष्टता जिससे प्रत्येक अधिकारी को यह स्पष्ट हो कि उसे कौन रिपोर्ट करेंगे, तथा वह स्वयं किसे रिपोर्ट करेगा। (ii) लघुता, ताकि संप्रेषण प्रक्रिया से कम से कम समय नष्ट हो

(iii) सूत्र उत्तरदायित्व–वाहक के रूप में (Line as a Carrier of Accountability) उदाहरणार्थ, किसी वस्तु का निर्माण एवं विक्रय करने वाली कंपनी में सर्वप्रथम अंशधारीगण प्रबंध संबंधी समस्त उत्तरदायित्व संचालक मंडल को सौंप देते हैं। संचालक मंडल अपने उत्तरदायित्व का कुछ अंश स्वयं संपादित करते हैं, शेष प्रमुख अधिकारी को सौंप देते हैं। कार्यभार सौंपने का यह क्रम विभिन्न स्तरों को पार करता हुआ अन्तिम बिन्दु तक पहुंचता है जहाँ पर कार्यकारी दल प्रत्यक्ष रूप से कार्य संपादित करता है।

सूत्र अभिकरणों की विशेषताएँ (Features of Line Agencies)

(i) संगठन के मूल उद्देश्यों की पूर्ति : उदाहरण के लिए शिक्षण के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना किसी भी विश्वविद्यालय का मूल उद्देश्य होता है। शिक्षण विभाग सीधे यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए काम करता है इसलिए यह विश्वविद्यालय का सूत्र अभिकरण है। लेकिन लेखा विभाग, परीक्षा विभाग या पुस्तकालय स्टाफ अभिकरण है।

(ii) निर्णय लेने का अधिकार : उदाहरण के लिए पुलिस महानिरीक्षक से लेकर पुलिस कांस्टेबल तक सारा पुलिस विभाग एक पंक्ति में कानून और व्यवस्था बनाये रखने के काम से सीधे जुड़े रहता है। वास्तव मे यह गृह विभाग की एक कर्मचारी इकाई है।

(iii) सरकारी कार्यक्रमों के संचालन का दायित्व : सूत्र अधिकारियों की तीसरी विशेषता यह है कि वे सरकारी नीतियों के संचालन और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए सीधे जिम्मेदार होते हैं।

(iv) आम जनता से सीधे संपर्क : सरकार में शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग या कृषि विभाग आम जनता को सीधे सेवायें उपलब्ध कराते हैं।

(v) मुख्य कार्यकारी का सीधा नियंत्रण : यह अभिकरण मुख्य कार्यकारी और विधायिका के प्रति जवाबदेह होते हैं। उदाहरण के लिये सरकारी विभाग का मुखिया एक मंत्री होता है जो सीधे प्रधानमंत्री और संसद के प्रति जवाबदेह होता है।

सूत्र अभिकरणों के प्रकार (Kinds of Line Agencies)

सरकारी विभाग, सार्वजनिक निगम, सरकारी कंपनियां और स्वतंत्र नियमन आयेाग (आई0आर0सी0) शामिल हैं। स्वतंत्र नियमन आयोगों का गठन मुख्य रूप से अमरीका में किया गया।

स्टाफ अभिकरण (Staff Agency)

किसी भी प्रशासन को चलाने के लिए 'स्टाफ' की आवश्यकता होती है। सूत्र इकाइयाँ अकेले अपने दम पर विभाग के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकती। उन्हें 'स्टाफ' का सहारा लेना पड़ता है। अंग्रेजी में 'स्टाफ' का अर्थ 'छड़ी' या 'डण्डा' होता है। जो चलते समय शरीर को सहारा देती हे, परन्तु वह स्वयं यह निर्णय नहीं कर सकती कि कब चलना है और किस दिशा में जाना है।'' सूत्र अभिकरण इसी स्टाफ के सहारे अपने विभाग को चलाता है। मूने ''स्टाफ कार्यपालिका के व्यक्तित्व का ही विस्तार है। उसका अर्थ है : अधिक आँखें, अधिक कान और अधिक हाथ जो कि उसकी योजना बनाने तथा क्रियान्वित करने में उसे सहायता दे सके।'' व्हाइट ''स्टाफ उच्च श्रेणी के पदाधिकारी को परामर्श देने वाला एक अभिकरण होता है, जिसका कोई क्रियात्मक उत्तरदायित्व नहीं होता।'' हैनरी फेयोल ''यह एक सहायता है ... यह प्रबन्धक के व्यक्तित्व का एक प्रकार से विस्तार है जिससे कि अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में उसे सहायता मिल सके।'' चार्ल्सवर्थ ''स्टाफ अधिकारी वह है जो अनुसंधान, निरीक्षण तथा अध्ययन में विशेषज्ञ हो तथा जो सम्बन्धित मुख्य कार्यकारी अधिकारी के द्वारा प्रस्तावित योजनाएँ तथा कार्यक्रम तैयार करता हो।''

अतः इस प्रकार स्टाफ परामर्श का कार्य करता है तथा सहायता पहुँचाता है जबकि सूत्र अधिकारी आदेश देता है।

स्टाफ के प्रकार (Types of Staff)

(i) सामान्य स्टाफ : सामान्य स्टाफ प्रायः कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्यों को पूरा करने में उसकी सहायता करता है, उसे परामर्श देता है, तथ्यों को संग्रह करता है तथा महत्त्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने में सहायता देता है। वह असम्बद्ध तथा अनावश्यक बातों को दूर कर तथ्यपूर्ण बातें मुख्य कार्यपालिका के सम्मुख रखता है तथा उसके समय एवं शक्ति की बचत करता है।''

(ii) सहायक स्टाफ : जैसे रेलवे विभाग का मुख्य उद्देश्य रेलें चलाना है, किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। पिफनर के अनुसार, ''सहायक स्टाफ क्रियायें ऐसी गृह रक्षक प्रक्रियायें हैं जो प्रत्येक विभाग में सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए होती हैं।''

(iii) तकनीकी स्टाफः तकनीकी स्टाफ को कोई सत्ता प्राप्त नहीं होती। यह निर्देश नहीं देता। इसका कार्य सेवा करना है, जैसे कि इंजीनियर, वित्तीय विशेषज्ञ, कानूनी सलाहकार आदि। आज के वैज्ञानिक युग में मुख्य कार्यपालिका को तकनीकी ज्ञान की सलाह मिलने पर ही वह किसी भी नीति को आगे बढ़ा सकता है।

स्टाफ अभिकरणों के कुछ उदाहरण (Example of Staff Agencies)

संयुक्त राज्य अमेरिका में 'बजट ब्यूरो'। यह राष्ट्रपति की बजट बनाने तथा इस सम्बन्धी अन्य मामलों में सहायता करता है।

भारत में केन्द्रीय सरकार के स्टाफ अभिकरणों में (क) वित्त मंत्रालय में आर्थिक मामलों का विभाग (ख) कैबिनेट सचिवालय (ग) कैबिनेट समितियाँ (घ) योजना आयोग (ड़) गृह मंत्रालय में प्रशासनिक सम्भाग (च) प्रशासकीय सुधार आयोग आदि शामिल हैं।

स्टाफ अभिकरणों के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं :–

(i) उनके कर्त्तव्यों का वास्तविक निष्पादन करने का दायित्व इन पर नहीं है जिनके लिए सेवाएँ निर्मित तथा स्थापित की जाती हैं। (ii) उनका कार्य केवल अनुसंधान, सहायता तथा परामर्श सम्बन्धी है। (iii) आदेश देने की शक्ति उनके पास नहीं है।

स्टाफ अभिकरणों के कार्य (Functions of Staff Agencies)

एल0डी0 व्हाइट के अनुसार :– (i) मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा अन्य उच्च अधिकारियों को पर्याप्त तथा उचित सूचना देना (ii) आगामी समस्याओं की पूर्ण जानकारी तथा तत्संबंधित कार्यक्रम बनाना; (iii) निर्णयों को बिना विलम्ब के तथा बुद्धिमतत्तापूर्ण करने में सहायता (iv) प्रत्येक उस मामले को वहाँ से निकाल लेना जो कहीं और सुलझाया जा सकता है; (v) उसके समय को बचाना; तथा (vi) निर्धारित नीति तथा कार्यकारी निर्देशों का अधीनस्थों द्वारा अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु साधनों की खोज करना।

पिफनर के अनुसार (क) सूचना देना, अध्यापन तथा परामर्श। (ख) तालमेल केवल योजनाओं द्वारा ही नहीं बल्कि मानवीय सम्पर्क द्वारा भी। (ग) तथ्य खोजना तथा अनुसंधान (घ) नियोजन (ड़) सम्पर्क (Contact and Liaison) (च) सूत्र की सहायता करना (छ) कभी कभी सूत्र कमाण्डर द्वारा प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करना आदि शामिल हैं।

मूने के अनुसारः (i) सूचना सम्बन्धी (ii) परामर्श सम्बन्धी (iii) पर्यवेक्षण सम्बन्धी

सूत्र तथा स्टाफ अभिकरणों के मध्य अन्तर (Difference between Line and Staff Agencies)

(i) सूत्र अभिकरण प्राथमिक अभिकरण हैं। ये मूल प्रयोजनों की पूर्ति हेतू साध्य है। स्टाफ अभिकरण, मुख्य अभिकरण नहीं हैं। ये साध्य की प्राप्ति के लिए एक साधन है। (ii) सूत्र अभिकरण लोगों के सीधे सम्पर्क में कार्य करते हैं, परन्तु स्टाफ अभिकरण पर्दे के पीछे ही कार्य करते हैं। (iii) सूत्र अभिकरण कार्यान्वित अभिकरण कहलाते हैं, अर्थात् वे प्रशासन की नीतियों तथा कार्यक्रमों को व्यवहार में लागू करते हैं। परन्तु स्टाफ अभिकरण परामर्शदात्री अभिकरण कहलाते हैं। (iv) सूत्र अभिकरणों के पास प्राधिकार तथा आदेश जारी करने की शक्ति होती है, परन्तु स्टाफ अभिकरणों के पास आदेश जारी करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती। वह केवल नियन्त्रण तथा सहायता करती है।

सूत्र तथा स्टाफ अभिकरणों में उपरोक्त अन्तर के बावजूद वे इस जटिल ढंग से मिली हुई हैं कि उनमें भेद नहीं किया जा सकता। इनके बीच विभाजन की रेखा खींचना अति कठिन कार्य है। इनके कार्यों का पूर्ण पृथक्करण करना व्यावहारिक रूप से असम्भव है। उदाहरण के तौर पर किसी विभाग का सचिव अपने मंत्री के साथ सम्बन्ध के पक्ष से स्टाफ अधिकारी होता है परन्तु विभागीय पद सोपान के पक्ष से वह सूत्र अधिकारी कहलाते हैं।

सूत्र तथा स्टाफ के सम्बन्ध : नूतन प्रवृत्ति (Relations between Line and Staff–A New Trend)

पॉल एपलबी को भारतीय प्रशासन में स्टाफ तथा सूत्र के अन्तर को खोजने में बड़ी असुविधा हुई। प्रशासकीय संगठन का विश्लेषण करने पर हमें यह मालूम होता है कि समूचे प्रशासन में कोई भी व्यक्ति या इकाई ऐसी नहीं है जो केवल स्टाफ कार्य ही करती हो। सूत्र अभिकरण स्टाफ अभिकरणों से पृथक् तथा भिन्न होने का विचार एक

बीते युग की बात है तथा पूर्णतया असम्भव है। उदाहरणार्थ, शासन के विभिन्न सूत्र अभिकरणों को भर्ती एवं कर्मचारियों की नियुक्ति के बारे में लोक सेवा आयोग की सिफारिश माननी ही पड़ती हैं। साइमन ने ठीक ही लिखा है कि ''यह धारणा भ्रम और अन्धविश्वास पर आधारित है कि स्टाफ केवल परामर्श देता है, वह आदेश निर्देश जारी नहीं करता।''

अतः हम कह सकते हैं कि जब कोई इकाई जिस प्रकार का कार्य करती है तो उसे कार्य से उसका पता चलता है कि यह सूत्र अभिकरण का कार्यभार वहन कर रही है या स्टाफ का कार्यभार।

सूत्र तथा स्टाफ द्वंद :

1. सूत्र अधिकारियों का मत है कि (i) स्टाफ अधिकारी उनके कार्यों में दखल देते हैं। (ii) एक संतुलित और ठोस सलाह देने में असफल रहते हैं। (iii) परिणामों के लिए प्रत्यक्ष रूप से उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं। (iv) संगठन के हितों की अपेक्षा अपने विशेषीकरण पर जोर देते हैं।

2. दूसरी ओर स्टाफ अधिकारियों का कहना है कि (i) सूत्र अधिकारी नए विचारों का विरोध करते हैं और उनके अनुभवों को सुनने के लिए तैयार नहीं होते। (ii) वे स्टाफ की विशेषज्ञ सेवाओं का उचित उपयोग नहीं करते। (iii) वे सलाह मशविरा केवल अन्तिम स्तर पर लेते हैं। (iv) स्टाफ अधिकारियों के पास अपने उपयोगी विचारों को लागू करवाने के लिए प्रभुत्व की कमी है।

सूत्र तथा स्टाफ के संबंधों को सुधारने के उपाय
(Measures for Improving the Line and Staff Relationships)

(i) दोनों के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए। (ii) सूत्र अधिकारियों को स्टाफ की सिफारिशों का उचित प्रयोग करने का प्रशिक्षण दिया जाए। (iii) स्टाफ से सलाह लेने को आवश्यक एवं निरन्तर बनाया जाए। (iv) स्टाफ को सूत्र अधिकारियों की समस्याओं का समझना चाहिए और इनकी सलाह न माने जाने को इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना चाहिए। (v) दोनों में पद चक्रानुक्रम (rotation) होना चाहिए। (vi) स्टाफ कर्मचारियों का मनोबल बनाए रखने के लिए सूत्र अधिकारियों को उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखना चाहिए। (vii) स्टाफ को उच्च अधिकारी के समक्ष अपील करने का अधिकार होना चाहिए (viii) स्टाफ की प्रवृत्ति आदेश देने की नहीं बल्कि अनुमोदन पाने की होनी चाहिए। (ix) दोनों को एक दूसरे का सम्मान करते हुए सद्भावपूर्ण कार्य करना चाहिए। (x) समस्या सुलझाने के लिए समूह प्रणाली का उपयोग करना चाहिए।

सहायक अभिकरण (Ausiliary Agencies)

पिफनर स्टाफ तथा सहायक अभिकरणों में कोई अन्तर नहीं समझते। सहायक अभिकरणों को वह 'स्टाफ' में ही सम्मिलित कर लेते हैं। जिसमें तकनीकी स्टाफ में वे अधिकारी तथा यूनिट शामिल हैं जो विभिन्न प्रशासनिक विभागों के सांझे फुटकर कार्य करती हैं। **विलोबी** इन्हें 'संस्थात्मक' (Institutional) अथवा 'हाऊस कीपिंग' कार्य कहता है। **गॉस** इन्हें 'सहायक तकनीकी स्टाफ सेवाओं' (Auxilliary technical staff service) की संज्ञा देता हैं **एल0डी0 व्हाइट** इन्हें 'सहायक सेवाओं' (Auxilliary services) के नाम से पुकारता है। **विलोबी तथा व्हाइट** के अनुसार इन्हें 'स्टाफ' नहीं कहना चाहिए क्योंकि ये उस तरह का कोई कार्य नहीं करती जिस प्रकार का 'स्टाफ' करता है। वह विभागों के प्रति हाऊस कीपिंग प्रकार की सेवा करती हैं।

सहायक अभिकरणों से लाभ (Advantages of Auxiliary Agencies)

(i) कार्यों का विशेषीकरण (ii) कर्मचारी संस्थागत क्रियाओं के दायित्व से पूर्णरूप से मुक्त (iii) एक जगह काम हो

जाने से प्रशासकीय खर्च में कमी (iv) संस्थागत कार्यों को देखने के लिए पूरा समय (v) नये अनुसंधान एवं प्रयोग के लिए समय (vi) प्रशासन में मिव्ययता।

सहायक अभिकरणों के अवगुण (Disadvantages of Auxiliary Agencies)

(i) सहायक अभिकरणों की स्थापना से विभाग बिखर जाते है (ii) सहायक अभिकरण सूत्र अभिकरणों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकती हैं (iii) सहायक अभिकरण सूत्र अभिकरणों के उद्देश्यों को पीछे धकेल मितव्ययता तथा एकरूपता पर अधिक बल देना शुरू कर देती है। (iv) कई बार सहायक अभिकरणों के साथ लंबे पत्र व्यवहार के कारण अपेक्षित वस्तुएं अथवा सेवाएं बड़ी देर से प्राप्त होती हैं,

सहायक एवं स्टाफ क्रियाओं में समानता (Similarities in the Activities of Auxiliaryu and Staff Agencies)

(i) दोनों का प्रमुख कार्य सूत्र अभिकरण को सहायता पहुँचाना है। (ii) ये दोनों सूत्र अभिकरण की तुलना में अकार्यात्मक होते हैं। (iii) दोनों विभाग गृह प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करते हैं।

सहायक एवं स्टाफ क्रियाओं में अन्तर (Difference between Auxiliary and Staff Activities)

(i) साइमन के अनुसार, ''सहायक तथा स्टाफ इकाइयों में सामान्यतः यह अन्तर होता है कि सहायक इकाइयाँ वे होती हैं जो कि कुछ सामान्य कार्यों को पूरा करके सूत्र संगठनों की सहायता करती हें, जबकि स्टाफ इकाइयाँ कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न करके मुख्य कार्यपालिका की सहायता करती है जिन्हें वह सहायक संगठनों को हस्तांतरित नहीं कर सकता।'' (ii) सहायक अभिकरण क्रियाशील होती हैं, जबकि स्टाफ अभिकरण का कार्य केवल परामर्श देना, विचार करना अथवा योजना बनाना होहता है। सहायक अभिकरण संगठन के लिए सामग्री, कागज, स्याही आदि की पूर्ति करते हैं। (iii) स्टाफ अभिकरणों का सम्बन्ध मौलिक नीतियों से होता है। इसके साथ ही वे सूत्र अधिकारियों की नीतियों को लागू करने में सहायता करते हैं। वे नीति निर्धारण में सुझाव देते हैं। प्रशासकीय पुर्नसंगठन के मामलों में वे कार्यपालिका को सहायता भी देते हैं। इसके विपरीत सहायक अभिकरणों को मौलिक नीतियों से कोई वास्ता नहीं होता। सहायक तथा स्टाफ अभिकरणों में उपर्युक्त भेद होते हुए भी दोनों विभागों के कार्यों में सम्पादन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

3. विभाग (Department)

मुख्य कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त सरकारी कार्य को अनेक खंडों में विभाजित कर लिया जाता है। इनमें प्रत्येक खंड को विभाग कहा जाता है। विभाग संगठन का सबसे बड़ा तथा अधिक प्रचलित स्वरूप है। यह सीधा ही मुख्य कार्यपालिका के अधीन होता है। यह स्पष्ट रूप से कमान की इकहरी शृंखला के साथ जुड़ा होता है। इस प्रकार विभाग प्रशासकीय पदसोपान में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। प्रत्येक सरकार का अधिकतम कार्य विभागीय प्रणाली के अन्तर्गत ही चलाया जाता है। प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, गृह, कृषि, रेल, डाक व तार व वित्त आदि सरकार के प्रमुख विभाग होते हैं। लेखांकन में, एक विभाग को आमतौर पर एक बड़े संगठन का एक विलक्षण हिस्सा समझा जाता हैं किसी व्यवसाय की वृद्धि के लिए ठोस, पेशेवर लेखांकन प्रथाओं को शुरू करना और बनाए रखना आवश्यक है।

'विभाग' शब्द कई अलग–अलग चीजों को संदर्भित कर सकता है। उदाहरण के लिए एक राष्ट्र के भीतर एक प्रशासनिक विभाग, एक सरकारी मंत्रालय या यहां तक कि एक संस्थान का एक हिस्सा।

इस विशेष परिभाषा में, हम 'विभाग' शब्द का उल्लेख करते हैं क्योंकि इसका उपयोग किसी संगठन के अलग–अलग प्रभागों को संदर्भीत करने के लिए किया जाता है। एक कंपनी के भीतर विभागों को कई अलग–अलग

मापदंडों के आसपास आयोजित किया जा सकता है – जैसेः– उनका विशिष्ट कार्य, उत्पादों द्वारा, ग्राहकों द्वारा, भौगोलिक स्थिति द्वारा या प्रक्रियाओं द्वारा।

कुछ संगठनों के लिए यह वित्तीय दृष्टिकोण से प्रत्येक विभाग के लिए आय और खर्चों को देखने के लिए दिलचस्प या महत्वपूर्ण है ।

विभागों का उपयोग क्यों किया जाता है?

- उदाहरण के लिए, अपने कार्यों द्वारा व्यावसायिक गतिविधियों को विभाजित करके संगठन का एक उच्च स्तर प्रदान करने के अलावा, एक कंपनी के भीतर विभागों को बनाने के लिए अधिक दक्षता, उत्पादकता और कम लागतों को बनाने के लिए दिखाया गया है।
- एक निश्चित आकार की कंपनियां विशेष रूप से उपयोगी विभाग के टूटने का पता लगा सकती हैं, क्योंकि वे एक कंपनी के भीतर प्रत्येक इकाई के प्रदर्शन का अधिक गहन अवलोकन प्रदान करते हैं। इस तरह, कंपनियों के पास पूरे संगठन में आय और व्यय का टूटना है और इसलिए विशिष्ट सुधार करने के लिए ज्ञान से लैस हैं।
- बड़ी कंपनियों में, विभागों में अधिक स्वायत्तता से कार्य करने की क्षमता हो सकती है, निर्णय लेने से उनके विभाग को सीधे इस आशय के साथ लाभ होता है कि संगठन की संपूर्णता पर उनका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
- छोटी कंपनियां अधिक संवादात्मक हो सकती हैं और एक साथ कार्य कर सकती हैं, जिससे अधिक सामूहिक निर्णय हो सकते हैं जो कि कारवाई से पहले उनके समग्र प्रभाव के लिए माना जाता है।
- छोटी कंपनियों के लिए, विभाग उतने उपयोगी नहीं हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक कंपनी की अपनी अलग–अलग जरूरतें होती हैं और यह तय करना चाहिए कि वे फिट दिखें।

विभाग की आय और व्यय

उदाहरण के लिए, कंपनी के आकार और विभागों के प्रकार पर निर्भर करता है, जिसमें यह व्यवस्थित है, विभागों की बिक्री, भर्ती, खरीद या लेखांकन जैसे स्रोतों से अपनी आय हो सकती है।

किसी विभाग के लिए आय की गणना करने के लिए, प्रत्येक विभाग को अपने संबंधित उत्पाद या सेवा बिक्री के आंकड़ों से जुड़ा होना चाहिए।

इसी तरह, कंपनियां भी अपनी लागत और दक्षता को बेहतर ढंग से समझने के लिए प्रत्येक विभाग द्वारा किए गए खर्चों पर विचार (या आवश्यकता) कर सकती हैं।

4. सार्वजनिक निगम (Public Corporation)

सार्वजनिक निगम का अर्थः

एक सार्वजनिक निगम सार्वजनिक उद्यम का वह रूप है जो संसद या राज्य विधानमंडल के विशेष अधिनियम द्वारा एक स्वायत्त इकाई के रूप में बनाया जाता है। चूंकि एक सार्वजनिक निगम एक कानून द्वारा बनाया गया हैय इसे एक वैधानिक निगम के रूप में भी जाना जाता है। कानून सार्वजनिक निगम के उद्देश्यों, शक्तियों और कार्यों को परिभाषित करता है। लोक निगम एक नया संगठन साधन है जो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन से लिया गया है। लोक निगम व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों से राज्य में प्रवेश का परिणाम है। प्रत्येक लोक निगम का एक

निर्देशक मण्डल होता है, जो इसकी नीतियों को बनाता है और एक जनरल मैनेजर निगम के आन्तरिक प्रशासन को चलाता है। यह निगम निकाय होते हैं जो अपने नाम पर सम्पत्ति एवं नकदी रखते हैं। इसको विशाल वित्तीय तथा प्रशासकीय स्वायत्तता प्राप्त होती है, परन्तु ये सरकारी नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त नहीं होते हैं। लोक निगम प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जब सरकार उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में स्वयं प्रवेश करना चाहती हो। आधुनिक काल में विकासशील देशों की सरकारें भी इन क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी है। इसलिए लोक निगम, लोक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। भारतीय खाद्य निगम, जीवन बीमा निगम, इंडियन एयर लाइंस निगम, एयर इंडिया, भारतीय उद्योग निगम, केन्द्रीय भंडारागार निगम, राजकीय व्यापार निगम इत्यादि भारत के कुछ प्रमुख लोक निगम हैं।

सार्वजनिक निगम की विशेषताएं:

(i) विशेष संविधि:– एक सार्वजनिक निगम संसद या राज्य विधानमंडल के एक विशेष अधिनियम द्वारा बनाया जाता है। अधिनियम मंत्रालय और संसद (या राज्य विधानमंडल) के साथ अपनी शक्तियों, उद्देश्यों, कार्यों और संबंधों को परिभाषित करता है।

(ii) अलग कानूनी इकाई:– एक सार्वजनिक निगम एक अलग कानूनी इकाई है जिसमें सतत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर है। इसका एक अस्तित्व है, सरकार से स्वतंत्र। यह ठीक से खुद कर सकते हैं– अनुबंध और फाइल सूट, अपने नाम से बना सकते हैं।

(iii) सरकार द्वारा प्रदत्त पूंजी:– एक सार्वजनिक निगम की पूंजी सरकार द्वारा या सरकार द्वारा नियंत्रित एजेंसियों द्वारा प्रदान की जाती है। हालांकि, कई सार्वजनिक निगमों ने भी पूंजी बाजार से पैसा जुटाना शुरू कर दिया है।

(iv) वित्तीय स्वायत्तता:– एक सार्वजनिक निगम को वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त है। यह अपना बजट तैयार करता है– और इसके व्यवसाय के लिए अपनी कमाई को बनाए रखने और उपयोग करने का अधिकार है।

(v) निदेशक मंडल द्वारा प्रबंधन:– इसका प्रबंधन सरकार द्वारा नियुक्त या नामित निदेशक मंडल में निहित है। लेकिन निगम के दिन–प्रतिदिन के कामकाज में कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं है।

(vi) अपना स्टाफ:– एक प्रकाशन निगम का अपना स्टाफ हैय जिनकी नियुक्ति, पारिश्रमिक और सेवा शर्तें निगम द्वारा ही तय की जाती हैं।

(vii) सेवा का उद्देश्य:– एक सार्वजनिक निगम का मुख्य उद्देश्य सेवा–उद्देश्य हैय यद्यपि यह स्वावलंबी और उचित लाभ कमाने की उम्मीद है।

(viii) सार्वजनिक जवाबदेही:– एक सार्वजनिक निगम को अपने कामकाज पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। इसके खातों का लेखा परीक्षा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक द्वारा किया जाता है। एक सार्वजनिक निगम की वार्षिक रिपोर्ट और लेखा परीक्षित लेख संसद या राज्य विधानसभाओं को प्रस्तुत किए जाते हैं, जो इन पर चर्चा करने का हकदार है।

सार्वजनिक निगम के लाभ:– एक सार्वजनिक निगम के निम्नलिखित लाभ हैं–

(i) परिचालन स्वायत्तता के कारण बोल्ड प्रबंधन:– एक सार्वजनिक निगम को आंतरिक परिचालन स्वायत्तता प्राप्त है– क्योंकि यह सरकारी नियंत्रण से मुक्त है। इसलिए, यह एक व्यवसाय की तरह तरीके से चल सकता है। प्रबंधन अपनी स्थितियों की गतिविधियों में प्रयोग से जुड़े साहसिक निर्णय ले सकता है, व्यावसायिक स्थितियों का लाभ उठा सकता है।

(ii) विधायी नियंत्रणः– एक सार्वजनिक निगम के मामले संसद या राज्य विधान मंडल की समितियों द्वारा जांच के अधीन होते हैं। प्रेस एक सार्वजनिक निगम के कामकाज पर भी पैनी नजर रखता है। यह सार्वजनिक निगम के प्रबंधन की ओर से अस्वास्थ्यकर प्रथाओं पर एक नजर रखता है।

(iii) योग्य और संतुष्ट कर्मचारीः– सार्वजनिक निगम अपने कर्मचारियों को आकर्षक सेवा शर्तें प्रदान करता है। जैसे कि यह योग्य कर्मचारियों को आकर्षित करने में सक्षम है। योग्य और संतुष्ट कर्मचारियों के कारण, औद्योगिक संबंध समस्याएं बहुत गंभीर नहीं हैं। कर्मचारियों में निगम के लिए कड़ी मेहनत करने की प्रेरणा है।

(iv) दर्जी का कानूनः– विशेष अधिनियम, जिसके द्वारा एक सार्वजनिक निगम बनाया जाता है, सार्वजनिक निगम की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दर्जी बनाया जा सकता हैय ताकि निगम अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम तरीके से कार्य कर सके।

(v) राजनीतिक परिवर्तन से प्रभावित नहीं :– एक विशिष्ट कानूनी इकाई होने के नाते, एक सार्वजनिक निगम राजनीतिक परिवर्तनों से बहुत अधिक प्रभावित नहीं होता है। यह नीति और संचालन की निरंतरता बनाए रख सकता है।

(vi) शोषण की कम संभावनाः– एक सार्वजनिक निगम के निदेशक मंडल में सरकार द्वारा नामित विभिन्न हित समूहों जैसे श्रम, उपभोक्ता आदि के प्रतिनिधि होते हैं। जैसे, सार्वजनिक निगम द्वारा समाज के किसी भी वर्ग के शोषण की संभावना कम होती है।

(vii) उचित मूल्य नीति :– एक सार्वजनिक निगम लागत–लाभ विश्लेषण के आधार पर एक उचित मूल्य निर्धारण नीति का पालन करता है। इसलिए, आम तौर पर सार्वजनिक निगम द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के प्रावधान से जनता संतुष्ट होती है।

सार्वजनिक निगम की सीमाएँ :–

(i) स्वायत्तता और लचीलापन, केवल सिद्धांत मेंः– एक सार्वजनिक निगम की स्वायत्तता और लचीलापन फायदे केवल सिद्धांत में मौजूद हैं। व्यवहार में, सार्वजनिक निगम के काम में मंत्रियों, सरकारी अधिकारियों और अन्य राजनेताओं द्वारा बहुत हस्तक्षेप होता है।

(ii) एकाधिकार शक्ति का दुरुपयोगः– सार्वजनिक निगम अक्सर अपने संचालन के क्षेत्र में एकाधिकार का आनंद लेते हैं। जैसे, एक तरफ वे उपभोक्ता की जरूरतों और समस्याओं के प्रति उदासीन हैं– और दूसरी ओर, अक्सर उपभोक्ताओं का शोषण करने में संकोच नहीं करते।

(iii) कठोर संविधानः– एक सार्वजनिक निगम का संविधान बहुत कठोर है। इसके गठन के कानून में संशोधन किए बिना इसे बदला नहीं जा सकता है। इसलिए, एक सार्वजनिक निगम अपने कार्यों में लचीला नहीं हो सकता है।

(iv) निम्न प्रबंधकीय दक्षताः– अक्सर सिविल सेवकों, जिनके पास प्रबंधन ज्ञान और कौशल नहीं होते हैं, उन्हें सरकार द्वारा निदेशक मंडल में एक सार्वजनिक निगम के रूप में नियुक्त किया जाता है। इस तरह, सार्वजनिक निगम की प्रबंधकीय दक्षता उतनी नहीं है जितनी निजी व्यावसायिक उद्यमों में पाई जाती है।

(v) विशेष अधिनियम पारित करने की समस्याः– एक विशेष अधिनियम पारित किए बिना एक सार्वजनिक निगम का गठन नहीं किया जा सकता है– जो एक समय लेने वाली और कठिन प्रक्रिया है। इसलिए, सार्वजनिक निगम स्थापित करने की गुंजाइश बहुत ही सीमित है।

(vi) डायवर्जेंट रुचियों का टकरावः– सार्वजनिक निगम के निदेशक मंडल में, विभिन्न समूहों के प्रतिनिधियों के बीच टकराव पैदा हो सकता है। इस तरह की झड़पें निगम के कुशल कामकाज पर बताती हैं और इसके विकास में बाधा बन सकती हैं।

5. बोर्ड एवं आयोग (Board and Commission)

बोर्ड (Board) :– बोर्ड ऐसे लोगों का एक समूह है, जिनके पास किसी निकाय के काम को तय करने और नियंत्रित करने की सभी शक्तियां हैं। वे आमतौर पर संगठन के शीर्ष पर होते हैं। अन्य मामलो में, प्रत्येक कृत्रिम कानूनी निकाय के शीर्ष पर एक बोर्ड होता है जहां मालिक और प्रबंधक अलग होते हैं। उदाहरण के लिए कंपनी, एलएलपी आदि। बोर्ड के सदस्यों को संगठन के वास्तविक मालिकों द्वारा नियुक्त किया जाता है। सदस्यों के लिए निश्चित अवधि हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। जैसे भारतीय क्रिकेट बोर्ड (BCCI), राज्य बिजली बोर्ड, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE), भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड (SEBI) आदि।

आयोग (Commission) :– एक आयोग इस तथ्य को छोड़कर समितियों के समान है कि आयोग सरकारी निकायों या सांविधिक निकायों द्वारा गठित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई सरकारी मंत्रालय किसी विशेष मुद्दे पर शोध करना चाहता है, तो वह एक आयोग बनाता है। आयोग के सदस्यों को या तो चयनित या इच्छुक समूहों द्वारा नामित किया जाता है। ऐसे आयोग के उद्देश्य के आधार पर कमीशन स्थायी या अस्थायी हो सकता है। आयोग के सदस्यों को एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया जाता है। जैसे चुनाव आयोग (ईसी), विश्वद्यिालय अनुदान आयोग (यूजीसी) आदि।

भारत सरकार के तहत बोर्ड और आयोगों की भूमिका

एक बोर्ड सदस्यों का एक निकाय है, जिन्हें सामूहिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता होती है। एक 'कमीशन' भी सदस्यों का एक निकाय है, लेकिन उनकी दो क्षमताएं हैं। पहले, सदस्य सामूहिक रूप से एक बोर्ड की तरह कार्य करते हैं– और दूसरी बात, प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से संगठन की एक अलग शाखा के प्रमुख के रूप में भी कार्य करता है।

सामान्य उदाहरण एक नगरपालिका बोर्ड, और एक लोक सेवा आयोग हैं। शब्द 'कमीशन' का उपयोग तब किया जाता है जब शरीर को सार्वजनिक उपयोगिता उद्यमों के लिए महत्वपूर्ण नियामक कर्तव्यों के साथ चार्ज किया जाता है। जहां कर्तव्य मुख्य रूप से प्रशासनिक या नियामक हैं, वे सार्वजनिक उपयोगिताओं के अलावा अन्य मामलों से संबंधित हैं।

प्रशासनिक बोर्ड किसी सरकार की संगठन इकाई के लिए विभागीय प्रमुख होता है। यह तथाकथित है क्योंकि इसके साथ प्रशासन करने के लिए सभी शक्तियां हैं, भले ही पर्याप्त अधिकार मुख्य प्रशासनिक अधिकारी को सौंप दिए गए हों। लेकिन संगठन के बोर्ड या कमीशन प्रकार को प्राथमिकता दी जाती है जहां प्रमुख कार्य बड़े पैमाने पर विवेक का प्रयोग करते हैं, और नियमों का मसौदा तैयार करना निजी अधिकारों को प्रभावित करता है। ऐसे मामलों में कई व्यक्तियों का निर्णय एकल व्यक्ति से श्रेष्ठ होने की संभावना है।

ऐसी सेवाएँ जिनके लिए एक बोर्ड या आयोग विशेष रूप से वांछनीय है और उपयोगी हैं–

(1) अर्ध–न्यायिक और अर्ध–विधायी सेवाएं जैसे सार्वजनिक उपयोगिता निगम, जो सेवाओं की दरों और शर्तों को निर्धारित करने के लिए नियमों और विनियमों का निर्माण/निर्माण करते हैं– और ऐसे नियमों और विनियमों के तहत आने वाले सार्वजनिक और निजी अधिकारों को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर अर्ध–न्यायिक निर्णय या निर्णयः

(2) वे सेवाएँ जो विवेकाधीन शक्तियों या नियंत्रण के लिए कहती हैं, उदाहरण के लिए। सार्वजनिक सेवा आयोगः

(3) ऐसी सेवाएँ जहाँ विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व किया जाता है, उदाहरण के लिए, श्रम सम्मेलन बोर्ड जिसमें श्रम, नियोक्ता और आम जनता के प्रतिनिधि होते हैं। रेलवे बोर्ड, चुनाव आयोग और लोक सेवा आयोग इस श्रेणी में आते हैं।

(4) ऐसे ऑपरेशन जिन्हें उदाहरण के लिए डी–राजनीतिकरण की आवश्यकता है, मानवाधिकार आयोग। लेकिन प्रशासन की कई शाखाएँ हैं, जिनके कर्तव्य दोनों क्षेत्र में आते हैं – प्रशासनिक और अर्ध–विधायी या अर्ध–न्यायिक। ऐसे मामलों में, दोनों प्रकार के संगठनों को जोड़ना बेहतर होता है, जो कि प्रशासनिक कार्यों के लिए एक अधिकारी और अन्य कार्यों के लिए एक बोर्ड होता है। उदाहरण के लिए, एक नगर पालिका में प्रशासनिक कार्य के लिए शिक्षा अधीक्षक और नीति और कार्यक्रम के निर्धारण के लिए एक बोर्ड हो सकता है।

6. मुख्यालय और क्षेत्रीय संबंध (Headquarter and Field Relationship)

राष्ट्रीय मुख्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के साथ लगभग हर संगठन दोनों के बीच महत्वपूर्ण तनाव का अनुभव करता है। टॉल्स्टॉय के अवलोकन के बावजूद कि "खुशहाल परिवार सभी समान हैंः हर दुखी परिवार अपने तरीके से दुखी होता है, हमारे अनुभव में राष्ट्रीय–क्षेत्रीय तनावों (या केंद्रीय मुख्यालय और फील्ड कार्यालयों के साथ कोई भी संबंध) से उत्पन्न नाखुशी वास्तव में संगठनों को कमजोर कर उनकी लक्ष्य प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करती है

तनाव से निपटने के बारे में कुछ विचार इस प्रकार हैं

- फील्ड कर्मचारियों के लिए यह महसूस करना असामान्य नहीं है कि वे 'वास्तविक' कार्य कर रहे हैं और राष्ट्रीय मुख्यालय के कर्मचारी क्षेत्र के लोगों के लिए, या राष्ट्रीय कार्यालय के कर्मचारियों के लिए क्षेत्र के कर्मचारियों को मांग और अधीरता के रूप में देखने के लिए समान तात्कालिकता साझा नहीं करते हैं। ये गतिशीलता वास्तविक और दर्दनाक हैं, लेकिन आप कम से कम यह जानने में आराम कर सकते हैं कि आप अकेले नहीं हैं।

- संगठनों में प्रतिमानों की समानता आंशिक रूप से उन विषम प्रोफाइल से उपजी है जो मुख्यालय बनाम भूमिकाओं में काम पर रखी जाती है। एक अच्छा फील्ड स्टाफ सदस्य – या कम से कम एक फील्ड ऑफिस का नेता – एक उद्यमी होने की आवश्यकता है। सर्वश्रेष्ठ अक्सर मिनी–कार्यकारी निदेशकों की तरह होते हैं– वे अथक, ऊर्जावान, प्रेरित, और कभी–कभी अधीर होते हैं, और वे अक्सर अनुमति के बजाय क्षमा मांगकर काम करते हैं। मुख्यालय के कर्मचारी, कई मामलों में, कार्यात्मक विशेषज्ञ (जैसे वित्त लोग) या प्रोग्राम डिजाइनर हैं। किसी भी तरह से, वे अत्यधिक विश्लेषणात्मक होने की प्रवृत्ति रखते हैं, अक्सर सिस्टम और मानकीकरण के संदर्भ में सोचते हैं, और विस्तार–केंद्रित पूर्णतावादी हो सकते हैं। न तो पक्ष गलत है (हम दोनों प्रकार के कर्मचारियों के लिए बहुत स्नेह से यह सब लिखते हैं!) – वास्तव में! दोनों पक्ष अपने काम कर रहे हैं और उन पैटर्नों के अनुरूप काम कर रहे हैं जिनके कारण आप उन्हें पहले स्थान पर रख सकते हैं। इसलिए जब एक राज्य निदेशक निराश हो जाता है कि एक राष्ट्रीय कार्यक्रम व्यक्ति एक व्यय नीति पर अपवाद नहीं करेगा, और कार्यक्रम के व्यक्ति को राज्य निदेशक द्वारा इस मुद्दे पर दृढ़ता से रोक दिया जाता है, तो यह पहचानने में मददगार हो सकता है कि दोनों को किया जा रहा है तुम कौन हो उन्हें काम पर रखा है।

- जब यह प्रतीत होता है कि अपरिहार्य तनाव का प्रबंधन हो रहा है, तो क्षेत्रीय कर्मचारियों की एक आम शिकायत यह है कि राष्ट्रीय टीम के सदस्यों को मैदान में वास्तविकता नहीं मिलती है – और अक्सर वे

सही होते हैं। मुख्य राष्ट्रीय टीम के कर्मचारियों को क्षेत्रों में समय बिताने के लिए काम करते हुए देखिए, ताकि वे वास्तविक संदर्भ को समझ सकें कि क्षेत्रीय कर्मचारी काम करते हैं।

- राष्ट्रीय टीम के सदस्यों को मैदान में समय बिताने के लिए सुनिश्चित करने के अलावा, क्षेत्रीय कर्मचारियों को राष्ट्रीय मामलों में शामिल करना सुनिश्चित करें। विशेष रूप से, यह मानने में चूक न करें कि आपकी नेतृत्व टीम में आपकी राष्ट्रीय टीमों के प्रमुख शामिल होने चाहिए। क्षेत्रीय कार्यालय प्रमुखों को संगठन के नेतृत्व में और वरिष्ठ निर्णय लेने वाली संरचनाओं में शामिल करने के तरीके खोजें – आपके निर्णयों को बेहतर तरीके से सूचित किया जाएगा कि कैसे चीजें जमीन पर चलेंगी, आपके क्षेत्रीय नेताओं को संगठन की दिशा में अधिक खरीदा जाएगा, और वे अपने कर्मचारियों के सदस्यों को और अधिक निवेश के लिए मिलेंगे।

- यदि क्षेत्रीय कर्मचारी राष्ट्रीय कार्यालय से ऐसे कार्यों के बारे में शिकायत प्रस्तुत करते हैं, जो स्पष्ट या अधीर लगते हैं, तो राष्ट्रीय नेताओं के लिए शिकायतों को खारिज करना आसान हो सकता है, लेकिन ऐसा करना अक्सर भारी भूल होती है। अंर्तनिहित समस्या को सुनें और इस बात पर ध्यान दें कि क्या शिकायतों में योग्यता है। क्षेत्रीय कर्मचारी आम तौर पर उचित लोग होते हैं जो सिर्फ अपना काम करना चाहते हैं, इसलिए यदि वे शिकायत कर रहे हैं, तो शायद एक अच्छा कारण है। (और साथ ही कॉनसेटर को पहचानें – आमतौर पर अगर क्षेत्रीय कर्मचारियों को राष्ट्रीय कार्यालय से बहुत समर्थन मिल रहा है, तो वे आभारी हैं और एक राष्ट्रीय नेता के रूप में आप इसे जानेंगे।) नीचे की पंक्ति– क्षेत्रीय कर्मचारियों की शिकायतों को गंभीरता से लें। , और अंर्तनिहित समस्याओं को ठीक करें।

- एक बहुत ही मददगार हस्तक्षेप क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दोनों पक्षों के प्रासंगिक लोगों के साथ काम करने और फिर सिद्धांतों को प्रसारित करने के लिए हो सकता है जो कब्जा कर लेते हैं कि चीजें कैसे अच्छी तरह से काम करती हैं। आप जब संदेह में, पूछें, जैसे सिद्धांत शामिल कर सकते हैं सीधे स्रोत पर जाएं, सबसे अच्छा मान लें, आदि।

- दोनों पक्षों के लोग अक्सर पूरे समूह में एक व्यक्ति के व्यवहार को जिम्मेदार ठहराने की गलती करते हैं। उदाहरण के लिए, एक अनुचित–लगने वाले राज्य के निदेशक राष्ट्रीय लोगों को सभी क्षेत्र के कर्मचारियों को क्रोधित करने के लिए नेतृत्व कर सकते हैं (जब कारण सिर्फ एक कुंठित व्यक्ति था), और एक राष्ट्रीय कार्यालय का व्यक्ति जो उनके पास नहीं है और उन्हें कुछ भेजना चाहिए। लीड स्टाफ को लगता है कि राष्ट्रीय कर्मचारियों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि वे कितने दबाव में हैं। वास्तव में, आप एक वाक्य के विषय के रूप में क्षेत्र, क्षेत्रीय, या राष्ट्रीय से बचने के आसपास एक मानदंड बना सकते हैं (जैसा कि राष्ट्रीय हमेशा हमें सामान करने के लिए कह रहा है या क्षेत्र ऐसा है की मांग की)।

7. अभ्यास हेतू प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मुख्य कार्यकारी का अर्थ समझाईएं।
2. सुत्र अभिकरण से आप क्या समझते हैं।
3. स्टाफ अभिकरण एवं सहायक अभिकरण का अर्थ बताईएं।
4. सार्वजनिक क्या हैं।

5. विभाग का अर्थ समझाईएं।
6. आयोग से आप क्या समझते हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मुख्य कार्यकारी के कार्य तथा प्रकारो का वर्णन कीजिएं।
2. सूत्र अभिकरण और इसके लाभ बताईएं।
3. स्टाफ एवं सहायक अभिकरण का वर्णन तथा अन्तर बताएं।
4. सार्वजनिक उपकर्म का अर्थ तथा विशेषताएं बताए।
5. बोर्ड तथा आयोग और उनके कार्यो का वर्णन करें।

इकाई–4

1. उत्तरदायित्व एवं जवाबदेहता (Responsibility and Accountability)

उत्तरदायित्व (Responsibility):– सत्ता तथा उत्तरदायित्व परस्पर जुडी हई अवधारणाएँ हैं। सत्ता के बिना उत्तरदायित्व नहीं निभाये जा सकते हैं तो दूसरी ओर बिना उत्तरदायित्व किसी को सत्ता सौंपना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। साइमन के अनुसार, "सत्ता की व्यवस्था की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें सदैव उत्तरदायित्व निर्धारित किए जाते है।

थियो हैमेन के शब्दों में– ''उत्तरदायित्व, एक अधीनस्थ को अपनी सत्ता के प्रयोग पर एक बन्धन है।''

दूसरे शब्दों में जहाँ सत्ता, आदेश देने की शक्ति है, वहीं उत्तरदायित्व– ''आदेश पालन का कर्त्तव्य है।'' उत्तरदायित्व दो प्रकार के होते हैं–

1. क्रियात्मक उत्तरदायित्व– सत्ता के साथ यह उत्तरदायित्व उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों को सौंप सकता है, अतः यह आंशिकता को बताता है।
2. सम्पूर्ण उत्तरदायित्व– सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का कभी प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता है।

विशेषताएँ (Characteristics)

1. उत्तरदायित्व एक व्यक्तिगत, आत्मिक तथा नैतिक गुण है जो सामान्यतः किसी कार्य को करने के लिए मिले अधिकार के साथ जुड़ जाता है।
2. उत्तरदायित्व की भावना एक दबाव का कार्य करती है।
3. उत्तरदायित्व स्वनियंत्रण तथा सत्ता–संतुलन का कार्य करता है।
4. उत्तरदायित्व कर्तव्यों से जुड़ा वह साधन है, जिसके आधार पर किसी को, किसी कार्य को न करने पर दोषी ठहराया जा सकता है। (दायित्वों के सम्बन्ध में उत्तर)

उत्तरदायित्व के प्रकार (Type of Responsibility)

प्रशासनिक संगठनों में मुख्यतः तीन प्रकार के उत्तरदायित्व होते है–

1. राजनीतिक उत्तरदायित्व

   लोक प्रशासन, राजनीतिक कार्यपालिका के नेतृत्व में कार्य करने वाली व्यवस्था है। संसदीय लोकतंत्र में विभागीय नियत्रण, मंत्री के द्वारा किया जाता है। प्रत्येक मंत्री, विधायिका में अपने विभाग के कृत्यों तथा कार्यकलापों के लिए उत्तरदायी है। चूँकि नीति, कानून तथा कार्यक्रमों का निर्माण तथा निर्देशन मुख्यतः मंत्री द्वारा किया जाता है अतः समस्त प्रशासनिक अभिकरण अपने–अपन विभाग के मंत्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं तथा सभी मंत्री, मुख्य कार्यपालिका के साथ मिलकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते है। प्रशासनिक

तंत्र, राजनीतिक कार्यपालिका के प्रति तथा राजनीतिक कार्यपालिका, विधायिका तथा जनता के प्रति उत्तरदायी रहती है।

2. संस्थागत उत्तरदायित्व

लोक प्रशासन में प्रत्येक संस्था, जनहितार्थ कार्य करती है। इसलिए संस्था अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं यदि संस्था अपने सार्वजनिक दायित्वों को भलीभाँति नहीं निभा पाती है और जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भी नहीं समझती है तो, उस संस्था का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। संस्थागत उत्तरदायित्वों की पूर्ति हेतु जन्म शिकायत निवारण व्यवस्था, संगठनात्मक विकास तथा नवाचारों के प्रयास किए जाते हैं।

3. व्यावसायिक उत्तरदायित्व

आधुनिक समय में प्रशासन, समाज तथा संगठनों सहित सभी क्षेत्र विशेषज्ञता से युक्त हो गए हैं। चिकित्सा, नर्सिंग, विधि, अभियांत्रिकी, लेखा, अर्थतंत्र तथा वाणिज्य इत्यादि से सम्बद्ध हजारों व्यावसायिक (Prfoessional) संघ निर्मित हो चुके हैं। विशेषज्ञ सेवाओं से सम्बद्ध कार्मिक अपने क्षेत्र के व्यावसायिक संघों के सदस्य होते हैं तथा संघ द्वारा निर्मित आचार संहिता (व्यावसायिक) का पालन करते हैं। प्रत्येक पेशे के अपने कुछ मूल्य, मानदण्ड तथा नियम निर्धारित हो चुके हैं। इन व्यावसायिक या पेशेवर प्रतिमानों का पालन करके सदस्यगण अपना उत्तरदायित्व निर्वाहित करते हैं, अन्यथा संघ से सदस्यता भी समाप्त हो सकती है।

इस प्रकार संगठनात्मक सत्ता को कार्य में लेते हुए व्यक्ति कई प्रकार के उत्तरदायित्वों को निर्वाहित करता है। एल. उरविक कहते हैं– 'किसी समूह या व्यक्ति को उत्तरदायित्व के निर्वहन हेतु आवश्यक सत्ता दिए बिना उन्हें या उसे किसी गतिविधि के लिए उत्तरदायी ठहराना स्पष्ट रूप से अनुचित एवं असंतोषजनक है। इसी प्रकार संगठन के सुचारू संचालन के लिए यह भी आवश्यक है कि सभी स्तरों पर सत्ता तथा उत्तरदायित्व एक साथ एवं एक समान हों।' इसी तरह यह भी कहा जाता है कि उत्तरदायित्व का विभाजन व्यक्तिगत होना चाहिए क्योंकि ''सभी की जिम्मेदारी, किसी की जिम्मेदारी नहीं होती है।''

उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता (Responsibility and Accountability)

सामान्यतः उत्तरदायित्व (Responsibility) तथा जवाबदेयता (Accountability) को भी किंचित् समानार्थी माना जाता है लेकिन इन दोनों में भी भेद है। उत्तरदायित्व को मुख्यतः व्यक्तिगत, नैतिक तथा कर्त्तव्य बोध से युक्त विचार माना जाता है जबकि जवाबदेयता में औपचारिक स्थिति तथा कानुनी बाध्यता को सामाहित किया जाता है। जवाबदेयता, मुख्यतः सैनिक संगठनों में प्रयुक्त होने वाला शब्द है जिसका अर्थ है–सही–सही और पर्याप्त रिकार्ड रखना तथा जन सम्पत्ति की सुरक्षा करना। पीटरसन तथा प्लोमैन के अनुसार–"जवाबदेह होने का अर्थ है पूरे किए गए या न किए गए कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायी (Answerable) होना।" शब्दकोषीय दृष्टि से "ऐसा जिम्मेदार, जिससे किसी मुद्दे पर किसी भी बात (कार्य) के प्रति जवाब या हिसाब–किताब माँगा जा सके, वह जवाबदेह कहलाता है तथा यह स्थिति जवाबदेयता है। प्रशासनिक संगठनो में निर्णय के स्तर अधिक होने से जवाबदेयता की समस्या बढ़ती है। पिफनर ने इन दोनों के मध्य यह अन्तर बताए हैः–

(1) उत्तरदायित्व एक नैतिक गुण है जिसमें औपचारिक स्थिति तथा औपचारिक शक्ति का सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है जबकि जवाबदेयता का सम्बन्ध संगठन में औपचारिक स्थिति से है।

(2) उत्तरदायित्व का सम्बन्ध लोक सेवकों की जनता की आकांक्षाओं के प्रति कर्त्तव्य बोध से है जबकि जवाबदेयता लोक सेवकों के उत्तदायित्व को लागू करने की विशिष्ट विधि को बताती है।

(3) उत्तरदायित्व का सम्बन्ध स्वचेतना या अन्तःकरण से है जबकि जवाबदेयता एक बाहरी एवं वस्तुनिष्ठ स्थिति है जो संगठनात्मक नियमों पर निर्भर करती है। जवाबदेयता तथा नियंत्रण में अन्तर यह है कि नियंत्रण तो कार्य निष्पादन के दौरान भी हो सकता है जबकि जवाबदेयता कार्य समापति पर ही होती है।

2. लोक प्रशासन पर नियन्त्रण

(Control Over Public Administration)

प्रत्येक लोकतांत्रिक देश में दो प्रकार की कार्यपालिका होती है। प्रथम, अस्थायी कार्यपालिका तथा द्वितीय, स्थाई कार्यपालिका। अस्थायी कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है जो जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रुप से एक निशचित अवधि के लिए चुना जाता है तथा जनता के प्रति प्रत्यक्ष रुप से उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति अपनी सुविधा अनुसार एक टीम का गठन करता है। इस टीम का प्रत्येक सदस्य किसी–न–किसी विभाग का मुखिया होता है तथा अपने विभाग के प्रशासन के सुचारु संचालन के लिए राष्ट्रपति के प्रति जवाबदेह होता है। दूसरी ओर, संसदीय प्रणाली वाले राज्यों में प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद अस्थायी कार्यपालिका होती है। इसका गठन जनता के द्वारा अप्रत्यक्ष रुप से एक निश्चित अवधि के लिए होता है। प्रत्येक मंत्री के अधीन एक विभाग होता है जिसका वह राजनैतिक मुखिया होता है। प्रधानमंत्री और उनकी मंत्रिपरिषद् व्यक्तिगत रुप से तथा सामूहिक रूप से संसद के माध्यम से लोगों के प्रति अप्रत्यक्ष रुप से जवाबदेह है।

स्थाई कार्यपालिका उस देश का लोक प्रशासन होता है जिसके अधिकारीगण निर्वाचित न होकर स्थाई तौर पर नियुक्ति किए जाते हैं। इनकी नियुक्ति उन नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए की जाती है जिनका निर्माण व्यवस्थापिका शाखा के द्वारा किया जाता है। इन नीतियों के कार्यान्वयन के लिए प्रशासनिक अधिकारियों को अनेक शक्तियाँ प्रदान की जाती है। इन शक्तियों के द्वारा प्रशासनिक अधिकारी आम नागरिकों के जीवन को गहरे से प्रभावित करते हैं जबकि जनता के प्रति प्रत्यक्ष रुप से जवाबदेह नहीं होते हैं। फलतः प्रशासन अतुलित शक्ति से युक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रशासन की इन शक्तियों को नियन्त्रित करने की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। इन्हे शक्ति प्रदान करते समय यह भय सदैव रहता है कि कहीं शक्ति की उपेक्षा या दुरुपयोग तो नही किया जाएगा। भारत में आपातकाल (26 जून, 1975 से 23 मार्च, 1977) में लोक प्रशासन द्वारा की गई ज्यादतियाँ इस बात की आवश्यकता पर बल देती है कि इन्हें नियन्त्रित करने के लिए प्रभावकारी प्रणाली का विकास किया जाय।

प्रशासन को नियन्त्रित करने की तीन प्रमुख विधियाँ अपनाई जाती हैः–

1. प्रशासन पर विधायी का नियन्त्रण
2. प्रशासन पर कार्यपालिका का नियन्त्रण
3. प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण

प्रशासन पर विधायी नियन्त्रण (Legislative Control over Administrative): व्यवस्थापिका का कार्य केवल कानून बनाने तक ही सीमित नहीं है वरन् वह प्रशासन के प्रत्येक पहलू में हस्तक्षेप कर सकती है। लोक प्रशासन जिन नीतियों को क्रियान्वित करती है उनकी रचना भले ही कार्यपालिका द्वारा की जाती है फिर भी संसद की स्वीकृति के बिना वे लोक सेवकों की प्रेरणा नहीं बन सकती।

प्रशासन पर संसदीय व्यवस्था में विधायी नियंत्रण के साधन

1. व्यवस्थापिका या संसद में लोक–प्रशासन के व्यवहार पर बहस कर सकती हैः संसद समय–समय पर लोक–प्रशासकों के व्यवहार को अपने विचार का विषय बना सकती है, यदि संसद देखती है कि उसकी

नीति एवं कानूनों का उचित क्रियान्वयन नहीं किया गया है तो सम्बन्धति लोक–अधिकारी को ऐसा करने के लिए निर्देशति कर सकती है। विलोबी ने लिखा है कि व्यवस्थापिका का कार्य प्रशासन द्वारा किए जानेवाले कार्य की प्रकृति तय करना और उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपनाए जानेवाले साधनों को निश्चित करना है। कार्य की सम्पन्नता के लिए यह आवश्यक निर्देश देती है तथा जिस व्यक्ति को कार्य सौंपा जाता है उस पर ऐसा पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण रखती है कि वह कार्य को सही रुप में एवं कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सके।

2. **राज्याध्यक्ष का भाषण (Speech fo the Head fo the State):** भारत, ब्रिटेन, कनाडा इत्यादि संसदीय प्रणाली वाले देशों में राज्याध्यक्ष के भाषण से संसद का प्रत्येक नया सत्र प्रारम्भ होता है। राज्याध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति के इस अभिभाषण में शासन की प्रमुख नीतियों, वर्तमान एवं भावी योजनाओं, राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय गतिविधियों के प्रति सरकार के दृष्टिकोणों एवं प्रशासनिक कदमों की चर्चा होती है। इस अभिभाषण पर बहस के लिए सदन को तीन–चार दिन का समय दिया जाता है। इस दौरान संसद के सदस्यों द्वारा अभिभाषण में व्यक्त सरकार की प्रशासनिक नीतियों की जमकर आलोचना और प्रत्यालोचना की जाती है और इसके फलस्वरुप जनमत जागरुक होता है और प्रशासन सतर्क होता है।

3. **बजट पर वाद–विवाद (Debate on Budget):** इसका मूलभूत सिद्धान्त यह है कि किसी भी नागरिक से तब तक कर नहीं लिया जा सकता, जब तक संसद के माध्यम से उसे अपने विचार प्रस्तुत करने तथा असंतोष प्रकट करने का भरपूर अवसर प्राप्त न हो जाए।" बजट पर वाद–विवाद के द्वारा भी संसद शासन पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित रखती है। विधायिका की अनुमति के बिना न तो एक पैसा खर्च किया जा सकता है और न ही कोई नया कर लगाया जा सकता है। प्रशासन के संचालन के लिए वित्त की अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। वित्त विधेयक और बजट पर होनेवाली आलोचनाओं की वजह से सरकार सजग रहती है।

4. **लेखा–परीक्षण (Audit):** नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक (Computer and Auditor General) विभिन्न सरकारी विभागों के लेखों की जाँच करवाकर अनियमितताओं का पता लगाता है तथा इसकी रिपोर्ट सदन को देता है तथा स्वयं राष्ट्रपति को भी सौंपता है। लोक सेवा के उच्चाधिकारी और कर्मचारी हमेशा लेखा परीक्षा (Audit Exam) से भयभीत रहते हैं।

5. **संसदीय समितियाँ (Parliamentary Committees):** संसदीय समितियों में आश्वासन समिति (Committeeor Assurance), अनुमान समिति (Estimates Committee), लोक–लेखा समिति (Public Accounts Committee), अधीनस्थ विधान समिति (Subordinate Legislation Committee) इत्यादि प्रमुख है। इन समितियों के अतिरिक्त संसद विशेष मामलों की छानबीन करने के लिए विशेष समितियाँ (Special Committees) भी गठित करती है। इन समितियों द्वारा जाँच के बाद जो प्रतिवेदन संसद में रखा जाता है उस पर वाद–विवाद एवं आलोचना होती है। प्रशासन पर नियन्त्रण का यह एक महत्त्वपूर्ण साधन बन जाता है।

6. **अन्य साधनः** कानून–निर्माण प्रक्रिया (Law & Making Process): प्रश्न–काल (Question Hour½: बहस एवं विचार–विमर्श (Debate and Discussions): अल्पकालीन विचार–विमर्श (Short Term Discussion) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Motion): कार्य–स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion): अविश्वास प्रस्ताव (No & Cofnidence Motion): आदि।

अध्यक्षात्मक प्रणाली में विधायी नियन्त्रण के साधनः– 1. विधायिका प्रशासकीय प्राधिकरणों के संगठन, उनके कार्यों एवं कर्तव्यों को निर्धारित करती है। 2. विधायिका प्रशासन की जाँच–पड़ताल के लिए समितियों की स्थापना कर

सकती है। 3. विधायिका नीतियों, विधियों एवं क्रियाविधियों का निर्धारण करती है। 4. विधायिका राष्ट्रीय कोष पर नियन्त्रण तथा लेखा–परीक्षा करती है। 5. अध्यक्षीय व्यवस्था में विधायिका राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकती है। 6. अध्यक्षात्मक प्रणाली में महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में विधायिका का अनुमोदन आवश्यक माना जाता है। 7. सन्धियों व समझौतो का अनुमोदन विधायिका द्वारा किया जाना आवश्यक है। 8. विधायिका के द्वारा व्यक्त वाद–विवादों और आलोचनाओं का असर सरकार को चौकन्ना बनाये रखता है।

संसदीय नियन्त्रण की समस्याएँ एवं सीमाएँः–

1. **समय का अभावः** विधानपालिकाओं के पास समय का अभाव होता है। आधुनिक कल्याणकारी राज्यों में विधानपालिकाओं के कार्य इतने अधिक बढ़ गए हैं कि वे कार्य के बोझ के नीचे दबी हुई नजर आती हैं। 10 अगस्त, 1990 को बिहार विधान–सभा के अध्यक्ष श्री गलाम सरवर ने बताया कि विधायिका सरकार से नौ हजार इकतालिस प्रश्नों का उत्तर चाहती थी, मगर सरकार समयाभाव या टालमटोल की वजह से मात्र तेरह सौ छियासठ प्रश्नों का उत्तर दे सकी।

2. **विशेषज्ञता का अभावः** संसद के सदस्य विशेषज्ञ न होने के कारण प्रशासनिक जटिलता और बारीकियों को प्रायः नहीं समझते। इसलिए वे लोक–सेवकों की रचनात्मक आलोचना नहीं कर पाते। लोक–सेवक भी स्वेच्छाचारी शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार करते हैं, जो संसद सदस्यों की पकड़ में नहीं आ पाता। संसदीय बहस के समय बहुत से सदस्य सजग नहीं रहते और बौद्धिक तर्क–वितर्क में उलझे बिना ही दलीय साथियों के समर्थन में हाथ खड़ा कर देते हैं। इन सभी कारणों से संसदीय नियन्त्रण वांछित रुप से प्रभावशाली एवं सार्थक नहीं हो पाता।

3. **आलोचना के लिए आलोचनाः** आलोचना का लक्ष्य प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारना अथवा उसकी कार्यकुशलता बढ़ाना उतना नहीं होता जितना जनता में लोकप्रियता अर्जित करना होता है। कई बार संसद सदस्य अपने पूर्वाग्रहों और व्यक्तिगत मनमुटावों के कारण ही किसी प्रशासनिक अधिकारी की आलोचना करते हैं।

4. **उत्तरदायित्व का प्रश्नः** भारत जैसे देश में देखा गया है कि जब कभी किसी प्रशासनिक मंत्री में अनियमितता का दोष पाया जाता है तो मंत्री उसे लोक सेवकों की गलती बताकर स्वयं बच निकलता है। संसदीय आलोचना के प्रत्युत्तर में मंत्री प्रायः इसी बात का ढिंढोरा पीटते हैं कि उसकी नीति तो ठीक थी किन्तु सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा उसे सही रुप में क्रियान्वित नहीं किया गया।

5. **एकपक्षीय आलोचनाः** संसदीय नियन्त्रण लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह गंभीर समस्या उत्पन्न कर देता है कि प्रशासनिक अधिकारी निष्पक्ष और ईमानदार रहते हुए भी किस प्रकार व्यवहार करें कि उन्हें संसद की आलोचनाओं का शिकार न बनना पड़े। संसदीय आलोचनाएँ प्रशासकों की प्रतिष्ठा पर कुठाराघात करती है, लोक–प्रशासक अपने सम्पूर्ण कार्य इस तरह संचालित करने को बाध्य होते हैं कि वे संसदीय रोष की सामग्री न बने और उनका प्रशासनिक जीवन खतरे में न पड़े।

6. मंत्रियों के अधीनस्थ होने के कारण लोक–सेवकों को बहुमत दल का अंग मान लिया जाता है और जिस प्रकार सत्ताधारी दल की आलोचना करना विरोधी दलों का धर्म होता है उसी प्रकार लोकसेवकों के प्रत्येक कार्य की आलोचना करना उनका कर्तव्य मान लिया जाता है। इस दलीय पक्षपात और आलोचना के लिए आलोचना की प्रवृत्ति का लोक–सेवकों के चरित्र और व्यवहार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

भारत में संसदीय नियन्त्रण की स्थितिः भारत जैसे संसदीय लोकतान्त्रिक देशों में संविधान के अनुसार विभागीय

कार्यों का उत्तरदायित्व मंत्री पर होता है। प्रशासनिक नीति निर्धारण के अतिरिक्त मंत्रिगण के पास अधिकारियों पर नियन्त्रण के साधन :–

1. अधिकारियों की नियुक्ति प्रायः मंत्रियों की इच्छानुसार ही की जाती है। 2. मंत्रियों को लोक–सेवकों की नियुक्ति, पदोन्नति, प्रशिक्षण, सेवाकाल आदि के बारे में समय–समय पर नियम बनाने, अध्यादेश जारी करवाने का अधिकार होता है। 3. मंत्री अवहेलना करने वाले लोक सेवकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकते हैं। 4. यदि प्रशासकीय संगठन के अधिकारी धन की माँग करें तो मंत्री योजना आयोग से इसकी सिफारिश करनें का, उन्हें अश्वासन दे सकता है। 5. संघीय लोकसेवा आयोग के माध्यम से भी मंत्री विभागीय अधिकारियों पर नियन्त्रण बनाए रख सकते हैं। 6. मंत्री जनता के सीधे सम्पर्क में रहते हैं, अतः वे स्वेच्छाचारी प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध लोकमत तैयार करते हैं।

प्रशासन पर कार्यपालिका का नियन्त्रण (Executive Control over Administrative): प्रशासन पर कार्यपालिका के नियन्त्रण से तात्पर्य है अस्थायी कार्यपालिका द्वारा प्रशासन की गतिविधियों को नियन्त्रित एवं निर्देशित करना। यह नियन्त्रण प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में सम्बन्धित मंत्री, जो कि उस विभाग का विभागाध्यक्ष या मुख्य कार्यपालक कहलाता है, के द्वारा किया जाता है। लोक सेवा हर देश में परिवर्तन में बाधा डालती है, और वह मुख्य कार्यपालिका द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों तथा नवीन योजनाओं के प्रति वांछित निष्ठा का प्रदर्शन भी नहीं करती है। लोक–सेवा द्वारा सामान्यतः परिवर्तन का विरोध किया जाता है।

कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियन्त्रण करने के साधनः

1. **नीति–निर्माण द्वारा नियन्त्रण :** संसदीय प्रणाली में मंत्रिमण्डल ही मूल रुप से नीतियों का प्रारुप तैयार करता है और सदन में बहुमत होने की वजह से उन नीतियों पर स्वीकृति की मुहर लगवा लेता है। इसके अलावा विभागीय मंत्री मुख्य कार्यपालिका एवं मंत्रिमण्डल से सलाह लेकर स्वयं भी अनेक नीतियों को निर्धारित करता है जो सम्बन्धित विभागों में लागू की जाती है। विभागीय मंत्री के पास निर्देशन (Direction), निरीक्षण (Inspection), पर्यवेक्षण (Supervision) एवं नियन्त्रण (Control) की शक्ति होती है। प्रत्येक उच्चाधिकारी और कर्मचारी अपने कार्यों के लिए विभागों के मंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। तात्पर्य है कि मंत्री का विभाग पर पूरा नियन्त्रण रहता है।

2. **संगठन एवं संरचनाओं का गठन व पुनर्गठन :** कार्यपालिका ही संगठनों की विशद् रुपरेखाएँ बनाती है जिनके द्वारा नीति के लक्ष्य पूरे किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कार्यपालिका को यह भी अधिकार है कि वह इन विभागों, निगमों व अन्य निकायों का आंतरिक पुनर्गठन कर सकती है। प्रशासकीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्यपालिका को यह अधिकार है कि वह आवश्यकतानुसार किसी भी संगठन के आन्तरिक स्वरुप को निश्चित करे अथवा विद्यमान स्वरुप का समयानुसार परिवर्तित करे। इस प्रकार कार्यपालिका प्रशासन के ऊपर नियन्त्रण स्थापित करती है।

3. **नियुक्ति तथा निष्कासन के द्वारा नियन्त्रण :** मंत्री अपने सचिव और विभागाध्यक्ष का चयन स्वयं करते हैं ताकि उसके साथ मंत्री सामंजस्यपूर्ण वातावरण में कार्य कर सके। लोक–सेवा के कार्मीकों की भर्ती के नियम कार्यपालिका द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। विभागीय मंत्रियों को कई प्रकार के अधिकारियों और कर्मचारियों को बर्खास्त करने का भी अधिकार प्राप्त है।

4. **बजट प्रणाली द्वारा नियन्त्रण :** प्रत्येक विभाग को अपनी वित्तीय और विभागीय आवश्यकताओं के लिए मंत्री पर निर्भर रहना पड़ता है। कार्यपालिका ही बजट तैयार करती है, उच्चाधिकारी द्वारा धन वित्तीय नियमों के अनुसार ही व्यय किया जाता है, जिसका आय–व्यय का हिसाब रखा जाता है और लेखा–परीक्षण भी होता

है।

5. **प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा नियन्त्रण :** जब कार्यपालिका को विधायिका विधि–निर्माण की शक्ति सौंप देती है तो इसे प्रदत्त विधायन कहा जाता है। कार्यपालिका विधायिका द्वारा प्राप्त ढाँचे के आधार पर अपनी आवश्यकताओं और उपयोगिताओं के अनुसार विधि–निर्माण करती है। इस विधि–निर्माण में बहुत से विभागों के संगठन, अधिकारियों की नियुक्ति और सेवा–शर्ते, अधिकार–क्षेत्र और कर्त्तव्य को भी निर्धारित किया जाता है।

6. **समन्वय द्वारा नियन्त्रण :** प्रत्येक विभाग की आन्तरिक क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित करने का अधिकार विभागाध्यक्ष के पास सुरक्षित होता है जबकि एक से अधिक विभागों की क्रियाओं को समन्वित करने का कार्य मंत्रिपरिषद के द्वारा किया जाता है। प्रशासनिक पदाधिकारियों की विभिन्न गतिविधियों में समन्वय स्थापित करके भी कार्यपालिका प्रशासन के ऊपर प्रभावपूर्ण रुप से नियन्त्रण रखती है।

प्रशासन पर कार्यपालिका के नियन्त्रण की समस्याएँ : 1. भारतीय राजनीति का यह एक मनोरंजक तथ्य है कि यहाँ दार्शनिक या पत्रकारों को युद्ध–मंत्री, प्रोफेसर को वाणिज्यमंत्री, राजा को पर्यटन मंत्री, वकील को जहाजरानी मंत्री, अशिक्षिति अँगूठा छाप को शिक्षा मंत्री, तथा पेशेवर राजनीतिज्ञ को वित्तमंत्री बना दिया जाता है।" मंत्रियों में सामान्यतया योग्यता का अभाव पाया जाता है। 2. मंत्री को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है । इनमें तकनीकी ज्ञान का अभाव पाया जाता है जिससे इन्हें अधिकारी–वर्ग द्वारा बताये गए आँकड़ों और तरीकों पर ही निर्भर करना पड़ता है। 3. राजनीतिक चालें, उठापटक, विरोधी दल के साथ दाँवपेंच, चुनाव के लिए मतदाता को पूर्व से ही प्रभावित करने इत्यादि में अधिक व्यस्त होते हैं। 4. सरकारों का अस्थायित्व (Instability fo Governments) तथा मंत्रियों के विभागों में परिवर्तन (Change in the Depart ments fo Ministers) दो ऐसे तथ्य हैं जो कार्यपालिका द्वारा प्रशासन पर नियन्त्रण के मार्ग में बाधा बन जाते हैं। 5. उच्चाधिकारी और कर्मचारी योग्य, कुशल और विशेषज्ञ होते हैं और उनमें तकनीकी ज्ञान और अनुभव का भण्डार पाया जाता है लेकिन वे मंत्रियों को ज्यादा जागरुक (Extra Conscious) नहीं बनाना चाहते, ताकि वे विभाग के अधिकारियों पर आश्रित रहे।

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control over Administration): प्रजातांत्रिक देशों में न्यायपालिका नागरिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षक होती है। न्यायपालिका इस बात पर भी नजर रखती है कि प्रशासकीय अधिकारी अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करें। अगर प्रशासकीय अधिकारी और प्रशासन किसी नागरिक पर अत्याचार करते हैं तो उसकी फरियाद को न्यायालय सुनता है और निर्णय देता है। अमेरिका की तरह भारत में भी न्यायिक क्षेत्र में न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। न सिर्फ न्यायपालिका भारत में सर्वोच्च है, बल्कि मौलिक अधिकार और संविधान की रक्षक भी है। आधुनिक प्रशासकीय राज्य (Administrative State) और जनकल्याण की भावना ने राज्य के कार्यों और अधिकारों का क्षेत्र व्यापक बना दिया है। अगर उनकी शक्तियों पर नियन्त्रण न रखा गया तो प्रशासन निरंकुश और तानाशाह बन जाएगा। लोक प्रशासन पर इस नियन्त्रण की धारणा को सबसे अच्छे ढंग से न्यायपालिका का नियन्त्रण पूरा करता है।

न्यायिक नियंत्रण के अवसर

1. अधिकार क्षेत्र का अभाव (Lack of Jurisdiction): जब प्रभावित नागरिक न्यायालय में आवेदन–पत्र देकर यह इंगित करता है कि अमुक अधिकारी द्वारा किया गया कार्य उसके अधिकार क्षेत्र या भौगोलिक क्षेत्र में नहीं आते और तथ्यों की जाँच के आधार पर क्षेत्र का दुरुपयोग प्रमाणित हो जाता है तो न्यायालय उन कार्यों को असंवैधानिक घोषित कर देती है। इसे न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) का अधिकार

कहा जाता है। अमेरिका और भारत में यह अधिकार न्यायालयों को प्राप्त है। 2. सत्ता का दुरुपयोग (Abuse fo Authority): जब लोक–सेवा के अधिकारी अपनी सत्ता और पद (Authority and Post) का प्रयोग अपने विरोधी को जान–बूझकर हानि पहुँचाने या किसी के प्रति बदले की भावना से करें तो प्रभावित व्यक्ति न्यायालय की शरण ले सकता है। 3. वैधानिक त्रुटि (Error fo Law): जब प्रभावित व्यक्ति न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा हेतु उन कार्यवाहियों की जाँच की माँग कर सकता है जो वैधानिक दृष्टि से गलत हों। 4. तथ्यों की प्राप्ति में त्रुटि (Error of Fact finding): यदि लोक–सेवा में अधिकारी सकारात्मक तथ्यों की अवहेलना करके नकारात्मक तथ्यों को जरुरत से ज्यादा महत्त्व देकर मनचाहा निष्कर्ष निकालते हैं। तो भी प्रभावित व्यक्ति उस अधिकारी के निष्कर्षों को न्यायालय में चुनौती दे सकता है। 5. प्रक्रिया की गलती (Error of Procedure): जब अधिकारी या विभाग कोई ऐसा कार्य करते हैं जिसमें निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, तो प्रभावित नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण ले सकता है।

प्रशासन पर नियन्त्रण के न्यायिक उपचार (साधन) : 1. सामान्य साधन या उपचार, और 2. असाधारण न्यायिक उपचार या साधन।

सामान्य उपचारः 1. सरकार के विरुद्ध अभियोग (Suit Against the Government): भारतीय संविधान के अनुच्छेद 300 में स्पष्ट कहा गया है सिर्फ केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा ही मुकदमा दायर नहीं किया जाता है बल्कि केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के विरुद्ध भी मुकदमा दायर किया जाता है और सरकार को एक विरोधी पक्ष के रुप में न्यायालय में ले जाया जा सकता है। 2. सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध अभियोग (Suit Against Public officials)'' जब किसी नागरिक को यह आभास हो कि किसी सरकारी अधिकारी ने अपनी सत्ता का दुरुपयोग, किसी तथ्य का पता लगाने में पक्षपात, और निर्धारित प्रक्रिया या कानून का पालन नही किया गया है, तो प्रभावित व्यक्ति न्यायालय के माध्यम से उस पर कानूनी कार्यवाही कर सकता है। इस स्थिति में सरकारी अधिकारी पर उसी तरह मुकदमा चलाया जाता है, जैसे एक सामान्य व्यक्ति पर। 3. प्रशासनिक कार्यों तथा निर्णयों का न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review of Administrative Actions and Decisions): भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि वह समय–समय पर प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करती रहे और अगर कोई प्रशासकीय निर्णय संविधान के विरुद्ध है तो उसको पुनरीक्षित कर असंवैधानिक घोषित करे लेकिन न्यायालय ऐसा तभी कर सकते हैं जब कोई प्रभावित व्यक्ति न्यायालय का दरवाजा खटखटाये। 4. कानूनी अपील (Statutory Appeals): प्रशासकीय आज्ञाओं और निर्णयों के विरुद्ध न्यायालय वैधता और अवैधता की जाँच कर सकता है। इसके अतिरिक्त अगर प्रत्याशित विधान द्वारा प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग करके कार्यपालिका कोई ऐसा कानून बनाये जो असंवैधानिक हो तो उसकी भी न्यायालय जाँच कर सकता है।

असाधारण न्यायिक उपचार : भारतीय संविधान की धारा 32 में सर्वोच्च न्यायालय को और धारा 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को कुछ विशिष्ट प्रकार के लेख या आदेश जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया है। 1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeus Corpus): बन्दी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ है ''शरीर रुप में उपस्थित करना।'' इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अविलम्ब न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है अगर उस व्यक्ति को बन्दी बनाये जाने के पर्याप्त कारण उपलब्ध न हों तो बन्दी बनाये गए व्यक्ति को न्यायालय मुक्त भी कर सकता है। परन्तु मीसा (MISA), डी. आई.आर. (D-I-R-) तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act) ने न्यायालय के बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिकार पर प्रहार किया है। 2. परामर्श (Mandamus): लेटिन शब्द "मैनडेमस'' (Mandamus) का शाब्दिक अर्थ है समादेश अथवा किसी को आज्ञा देना। यह आदेश न्यायालय द्वारा उन व्यक्तियों अथवा निकायों को दिया जाता है जो अपने कर्तव्यों का नियमानुसार पालन नहीं करते। यह उसी दशा में प्रसारित किया जाता है जब न्यायालय अन्य किसी युक्ति को असुविधाजनक तथा प्रभावहीन समझता है। 3. निषेध–आज्ञा (Prohibition): इस का अर्थ है,

''रोकना''। यह उच्च श्रेणी न्यायालय द्वारा निम्न श्रेणी के न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर अतिक्रमण करने से रोकना है। यह केवल न्यायिक या अर्द्धन्यायिक न्यायाधिकरणों के विरुद्ध निकाला जाता है। 4. उत्प्रेषण आदेश (Certiorari): इस शब्द का अर्थ है "प्रमाणित होना। इसके द्वारा उच्च न्यायालय किसी निम्न अभिलेख न्यायालय या न्यायिक कार्य करने वाले किसी अन्य अभिकरण या अधिकारी के प्रति जारी कर विचाराधीन चल रही किसी कार्यवाही या कुछ समय पहले समाप्त हुए किसी वाद–विवाद के सम्बन्ध में अभिलेख तथा कार्यवाहियों के प्रमाणन और वापसी की माँग करता है। निषेधाज्ञा तथा उत्प्रेषण लेख में मूल अन्तर यह है कि उत्प्रेषण लेख तो निषेधात्मक तथा स्वीकारात्मक दोनों है किन्तु निषेधाज्ञा केवल निवारक ही होती है। 5. अधिकार पृच्छा (Quo Warranto): इस विधि का अर्थ है "स्पेलिंग के अनुसार'' अधिकार पृच्छा वह उपचार या प्रक्रिया है जिसके द्वारा राज्य उस दावे की वैधता में पूछताछ करता है, जिसे कोई पक्ष किसी पद या विशेषाधिकार के विरुद्ध करता है। यह किसी व्यक्तिगत या गैर–सरकारी कार्यालय के विरुद्ध प्रसारित नहीं किया जा सकता।

प्रशासन पर न्यायिक नियन्त्रण की सीमाएँ और समस्याएँ: हेरिस तथा वार्ड (Harris and Ward) का मत है कि "पूर्ण न्यायिक नियन्त्रण शासन की नियामकता एवं कुशल संचालन को रोक सकता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए न्यायपालिका बेशक आवश्यक है परंतु प्रशासकीय क्षेत्र में इसका अत्यधिक प्रयोग करने से प्रशासन अपंग (Handicapped) हो जाता है, जो इसका प्रथम दोष है। द्वितीय, प्रशासन पर न्यायिक में नियन्त्रण न्यायपालिका तभी हस्तक्षेप कर सकती है जब कोई व्यक्ति आवेदन देकर इससे अनुरोध करता है। तृतीय, न्यायिक प्रक्रिया में नियमों, कानूनों, तथ्यों, प्रमाणों और गवाहों इत्यादि की कार्यवाहियों की इतनी उलझनें हैं कि प्रशासकीय अन्याय का शिकार व्यक्ति न्यायालय में जाने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर समझता है। चतुर्थ, न्यायिक प्रक्रिया में कई बार निर्णय में इतना अधिक विलम्ब हो जाता है कि उस समय तक नागरिक को बहुत अधिक मात्रा में ऐसी हानि पहँच चुकी होती है जिसकी भरपाई असम्भव होती है। पंचम, न्यायिक प्रक्रिया न सिर्फ सुस्त और जटिल है बल्कि यह प्रक्रिया बहुत अधिक महँगी भी पड़ती है। अनेक प्रशासकीय कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाता है। छटम् सभी प्रशासकीय कार्यों का न्यायिक पुनरावलोकन या न्यायिक समीक्षा नहीं की जाती है। सप्तम, आजकल प्रशासन का कार्य अत्यधिक तकनीकपूर्ण तथा विशेषीकृत (Technical and Specialised) होता जा रहा है। इसलिए न्यायाधीश तकनीकी ढंग के मामलों में प्रार्थियों के साथ पूरा न्याय नहीं कर पाते। अष्टम, न्यायिक नियन्त्रण घटना के बाद की प्रक्रिया होती है। न्यायिक नियन्त्रण में इस तरह का कोई प्रावधान नहीं है जिसके लागू होने से सम्भावित अव्यवस्था और घटना पर नियन्त्रण रखा जा सके। उपर्युक्त सीमाओं और समस्याओं के बाद भी प्रजातांत्रिक, संसदात्मक, अध्यक्षात्मक तथा विश्व की समस्त शासन प्रणालियों में कमोबेश न्यायपालिका के नियन्त्रण को अनिवार्य माना है। भारत के संदर्भ में, तो निश्चय ही सर्वोच्च न्यायालय नागरिक स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों का रक्षक और संरक्षक दोनों ही है।

3. प्रत्यायोजित विधान (Delegated Legislation)

वर्तमान लोकतांत्रिक राज्यों में कानून बनाने की शक्ति व्यवस्थापिका के पास होती है और इसी कारण इसे विधानपालिका कहा जाता है। इन कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार न्यायपालिका के अधिकार में है जबकि व्यवस्थापिका द्वारा इस कानूनों को लागू करना कार्यपालिका के अधिकार के अंतर्गत सुरक्षित है। इस प्रकार सरकार ने यह प्रयास किया है कि यह तीनों भाग अपने–अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रहें। कार्यपालिका शाखा के अधिकार क्षेत्र को विस्तृत एवं प्रभावशाली बनाने में प्रत्यायोजन विधान की अहम एवं विशेष भूमिका है। प्रत्यायोजन विधान के अंदर निर्माण का कार्य कार्यपालिका के द्वारा किया जाता है। यह प्रणाली ब्रिटेन में 16वीं सदी से प्रचलित है। संसद द्वारा कार्यपालिका को विधि निर्माण करने के अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसी कारण कार्यपालिका का विधि–निर्माण पर स्वयं का अधिकार नहीं होता है बल्कि यह दूसरों से प्राप्त किया जाता है। अतः इसे अधीनस्थ विधि–निर्माण भी

कहते हैं। अर्थ है कि जिस अधिनियम के अन्तर्गत इसका इस्तेमाल हुआ है, यह उसके अधीन होता है और, यदि कोई अपने अधिनियम का अतिक्रमण करता है तो वह अवैध होता है। मंत्रियों के अधिकारों से संबंधित समिति को डोनोमोर समीति भी कहते हैं। विधि–निर्माण मूलतः दो शब्दों से मिलकर बना है जिसके व्याकरण में दो अर्थ हैं – विधान बनाने या प्रवर्तन संबंधी कार्य और उसके फलस्वरूप निर्मित विधि। अतः प्रदत्त विधि–निर्माण का अर्थ किसी अधीनस्थ अधिकारी, जैसे मंत्री द्वारा निर्मित कानूनों से है।

विकास की आवश्यकता एवं कारण

आर्थर मैक मेहन का मानना है कि कानूनों के निष्पादन का कार्य करने वाली कार्यपालिका को ऐसे नियमों की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में दो सदियों में अनेक ऐसी संविधानेतर परंपराएं विकसित हो चुकी हैं जिनमें प्रत्यायोजन विधान की शक्तियां हैं।

ब्रिटेन में संसद के द्वारा पारित अधिनियमों में राजा द्वारा प्रवर्तन किए जाते हैं संशोधन करने संबंधी प्रावधान को हेनरी अष्टम धारा कहा जाता है। इस धारा का नाम ट्यूडर वंश के निरंकुश राजा हेनरी अस्टम पर रखा गया था। लेकिन इस बार प्रयोग ब्रिटेन में कभी भी नहीं किया गया था।

विश्व में प्रत्यायोजित विधान के उदय के कारणों तथा इसकी आवश्यकता का ही प्रकार वर्णन किया जाता है।

(1) तकनीकी जटिलताएं – प्रत्येक क्षेत्र में तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। विधायिका व राजनेता साधारण ज्ञान रखते हैं जबकि शासन के कार्यों में तकनीकी हस्तक्षेप अपरिहार्य है। परमाणु, चिकित्सा, कृषि, उद्योग, रक्षा, खनन वित्त, आदि ऐसे विषय हैं जिनके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही पक्षों से विधायिका के सदस्य अनभिज्ञ रहते हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि तकनीकी क्षेत्रों के कानूनों की व्याख्या संबंधित क्षेत्र विशेषज्ञ ही करें।

(2) सामाजिक आर्थिक विकास – प्रशासन के माध्यम से प्रत्येक नागरिक का कल्याण, सुरक्षा तथा विकास सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक नियोजन तथा विकास प्रशासन की अवधारणाओं का प्रसार एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। प्रत्यायोजन विधान के द्वारा कार्यपालिका सामाजिक आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को बेहतर स्वरूप एवं सफल संचालन प्रदान कर सकती है।

(3) विधायिका की व्यवस्था – आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के प्रसार के उपरांत सरकार के कार्यों तथा दायित्वों में व्यापक वृद्धि हुई है। भारत ब्रिटेन तथा अन्य कई देशों के आंकड़े गवाह हैं कि 20वीं सदी में विधायिका का कार्यभार बढ़ा है। अतः तुलनात्मक रूप से समय में कमी प्रतीत हुई है स्वतंत्रता से पूर्व भारत में संसद द्वारा प्रतिवर्ष औसतन 25–30 अधिनियम पारित किए जाते थे जबकि 21वीं सदी में प्रवेश करते समय यही आंकड़ा 40–70 तक जा पहुंचा है। इसी प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय संसद के 68 दिन बैठक करती थी। अब यही अवधि 6 माह से अधिक हो चुकी है।

(4) आपातकालीन परिस्थितियां – विश्वभर में बढ़ रहा प्रायोजित आतंकवाद का खतरा भी प्रत्यायोजित विधान को ही बढावा देगा। सर सिसिल कार ने कहा कि विश्वव्यापी युद्धों के कारण ही कार्यपालिका के आदेश अधिक हस्तक्षेप करने वाले हो जाते हैं।

(5) लचीलापन – 'डोनोमोर समिति' ने भी स्वीकार किया था कि बहुत से कानून मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं।

अतः इन कानूनों में स्थानीय संस्कृति या परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी करना होता है।

प्रदत्त विधि निर्माण के लाभ

1. संसद में छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती है अतः वह सिद्धांत तथा नीति संबंधी बड़े मामलों पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकती है।
2. अधिकारी उन स्थितियों में ही काम करते हैं जिनका कानून से संबंध होता है अतः वे ही सांविधिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सबसे उपयुक्त विवरण प्रदान करने में योग्य होते हैं।
3. कार्यपालिका को नियम बनाने की शक्ति प्रदान करके उन लोगों से परामर्श किया जा सकता है जिनके हित उससे प्रभावित होते हैं।
4. संसद के सत्र सदैव नहीं होते हैं। आपात स्थितिया असंभाव्य नहीं हैं उनके संबंध में तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता होती है।
5. नियम निर्माण के अधिकारों का प्रयोग स्थिति के संदर्भ में ही किया जाता है अत. इससे नियमों तथा विनियमों के समुचित प्रारूप बनाने में सहायता मिलती है।
6. संसद कोई सर्वव्यापक एवं सर्वदर्शी निकाय नहीं है। इसे सनी आकस्मिकताओं का जो योजना के दौरान उत्पन्न होती है पहले से ज्ञान नहीं होता और न ही उसका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

प्रदत्त विधि निर्माण की हानियां

लॉर्ड हेवार्ट का कहना है कि संसद विधायी शक्तियों के प्रदत्तीकरण की प्रणाली कुछ सीमाओं के भीतर कम से कम विवरण संबंधी मामलों में तो आवश्यक है क्योंकि केवल समय के अभाव के कारण ही सांसद के लिए सभी ऐसे मामलों को जिनके लिए विधान की आवश्यकता होती है समुचित रीति रिवाज से देखना असंभव हो जाता है।

प्रदत्त विधि निर्माण पद्धति के मुख्य आलोचक इंग्लैण्ड के महा मुख्य न्यायाधिपति 'लॉर्ड हेवार्ट' थे। उन्होंने प्रदत्त विधि निर्माण व प्रशासकीय अधिनिर्णय को नवीन निरकुशंता की संज्ञा दी है। संसद की प्रभुता व विधि का शासन ही उसके दो प्रमुख लक्षण हैं। इन दोनों में से किसी एक में भी हस्तक्षेप करना एक गंभीर कार्य है। किंतु प्रभावशाली तथा साहसी विचारों के लिए एक को हारना पडता है।

लॉर्ड हेवार्ट भी विधि निर्माण की आवश्यकता से पूर्ण इंकार नहीं करते थे। इनका कहना था कि ''यह स्पष्ट है कि संसद विधायी शक्तियों के प्रदत्तीकरण की प्रणाली कुछ सीमाओं के भीतर कम से कम विवरण संबंधी मामलों में तो आवश्यक है क्योंकि केवल समय के अभाव के कारण ही संसद के लिए सभी ऐसे मामलों के लिए विधान की आवश्यकता होती है। यह प्रदत्त विधि निर्माण के दुरुपयोग के कारण उसे दोषी मानते हैं। इस प्रणाली का दुरुपयोग होता है इसलिए इसकी आलोचना आवश्यक है। इस प्रणाली की मुख्य आलोचनाएं निम्न हैं–

1. कभी–कभी अति महत्वपूर्ण मामले जिनमें नीति संबंधी प्रश्न सम्मिलित होना कार्यपालिका को प्रदान कर दिए जाते हैं। ऐसा किया जाना आपत्तिजन है। क्योंकि नीति निर्माण तो संसद का ही कार्य है।
2. प्रायः प्रदत्त विधि निर्माण द्वारा न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करते प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार यह नागरिकों को न्यायिक रक्षा से वंचित कर देता है।
3. यह दलील खोखली है कि प्रशासन ऐसे व्यक्तियों तथा हितों से परामर्श करता है जो अधीनस्थ विधान द्वारा प्रत्यक्षतः प्रभावित होती हैं। जबकि अनेक मामलों में यह अधीनस्थ विधान सामान्य जनता को अत्यधिक प्रभावित करता है।
4. सरकारी अधिकारी कार्यों को पूरा करने की धुन में जनता की सुविधा तथा इच्छा की अवहेलना करने की सोचने लगते हैं। इस प्रकार कार्यपालिका के हाथों में नियम बनाने वाली शक्तियों के फलस्वरूप व्यक्ति के

अधिकार तथा स्वतंत्रता कम हो जाती है। सरकारी कर्मचारी भले ही सर्वोत्तम अभिप्रायों से कार्य करे लेकिन इस सम्पूर्ण जगत के लोगों की भांति उन पर अत्यन्त सावधानी से निगरानी रखना आवश्यक होता है।

5. न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को कभी औपचारिक रूप से सीमित नहीं किया जाना चाहिए।
6. यदि संसद द्वारा नियमों तथा विनियमों का समुचित परिनिरीक्षण नहीं किया जाता है तो प्रदत्त विधि निर्माण निरकुंशता का प्रतिरूप हो जाता है। संसद का एक महत्वपूर्ण कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण करना होता है। फिर भी प्रदत्त विधि निर्माण की संसद द्वारा परिनिरीक्षण समुचित रूप से आलोचनात्मक नहीं है।

प्रत्यायोजित विधान के रक्षोपाय

लोक प्रशासन के कार्य क्षेत्र तथा महत्व में हो रहे विस्तार के साथ ही प्रत्यायोजित विधान का प्रसार भी सुनिशचित है। अतः यह सझाव दिया जाता है कि प्रत्यायोजित विधान के संबंध में कतिपय रक्षोपायों को अपनाना चाहिए ताकि प्रत्यायोजित विधान त संबंधित हानियों में कमी लायी जा सके।

(1) समुचित नियंत्रण – जब विधायिका कानन निर्माण की शक्ति कार्यपालिका का दे तब स्वयं विधायिका तथा न्यायपालिका नियंत्रण का कार्य करें। न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम स्थापित किया गया है। ''हरमन फाइनर व जॉन ई. करसैल'' की मान्यता है कि प्रत्यायोजित विधान का समूचित विधान का समुचित पर्यवेक्षण संसद ही कर सकती है।

(2) प्रचार एवं परामर्श – प्रत्यायोजित विधान को अंतिम रूप देने से पूर्व यदि पर्याप्त प्रचार किया जाए तथा संबंधित क्षेत्र के व्यक्तियों या प्रभावित होने वाले लोगों से सलाह ली जाए तो कई प्रकार की विषमताओं से बचा जा सकता है। अमेरिका में सामान्यतः विधि को अंतिम रूप देने से पूर्व यह प्रयास किए जाते है

1. संबंधित उद्योगों या व्यापार के नियमों की प्रतियों को भेजकर लोगों के विचार जानना।
2. रुचि लेने वाले किसी भी व्यक्ति या समूह की गवाही या परामर्श लेना।
3. प्रभावी होने वाले संगठनों के हितों के बारे में अनौपचारिक बातचीत करना।

(3) उचित पात्रता – संसदीय लोकतंत्र में जहां मंत्री ही अपने विभाग के कृत्यों के लिए जिम्मेदार होता है वहां प्रत्यायोजित विधान का विस्तार होना चाहिए। प्रत्यायोजित विधान का यह सामान्य सिद्धांत है कि यह बहुत नीचे तक प्रत्यायोजित नहीं होना चाहिए। इस सिद्धांत का पालन बहुत कम होता है इसलिए समस्याएं अधिक आती हैं।

(4) स्वतंत्र एवं सशक्त न्यायपालिका – प्रत्यायोजन विधान के संबंध में डोनोमोर समिति ने सुझाया था कि न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र इससे सीमित नहीं होना चाहिए अन्यथा आम आदमी को असंख्य कष्टों का सामना करना पड़ सकता है।

(5) प्रकाशन – प्रत्यायोजित संसदीय नियंत्रण सर्वोच्च है क्योंकि विधान बनाने की शक्ति का प्रत्यायोजन भी संसद ही करती है। ब्रिटेन में लोर्ड सभा ने 1926 में विशेष आदेश समिति तथा हाऊस ऑफ कॉमन्स ने 1944 में संविधिक संलेख प्रखर समीति की स्थापना की है जो प्रत्यायोजित विधान पर निगरानी रखती है एवं जांच करके संसद को सूचित करती है। भारत में भी संविधान नियमों की धाराओं के अनुभव में अधीनस्थ विधान समिति होती है। भारतीय संसद में 1953 समिति कार्यरत है। इसमें 15 सदस्य हैं अधीनस्थ विधान समिति यह है कि क्या संविधान के सामान्य उद्देश्यों की अनुपालना हो रही है। क्या गान का कोई प्रस्ताव है? क्या इससे न्यायालय पर प्रभाव पड़ रहा है क्या इससे न्यायालय पर प्रभाव पड़ रहा है क्या संसद को नियमित समय पर सूचना दी जा रही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्यायोजित विधान दोषपूर्ण होते हुए भी आवश्यक है। अतः सावधानीपूर्वक कदम उठाने की आवश्यकता है।

4. प्रशासनिक अधिनिर्णयन (न्यायाधिकरण) (Administrative adjudication)

प्रशासनिक अधिनिर्णयन एक प्रक्रिया है जिसके अंदर नगरिकों और प्रशासनिक अधिकारियों या प्रशासन के मध्य उपजे वादों और शिकायतों की सुनवाई एवं करने के लिए प्रशासनिक न्यायालय गठित किए जाते हैं। इन्हें हम प्रशासन न्यायाधिकरण या अभिकरण के नाम से भी जानते हैं। अतः हम प्रशासनिक अधिनिर्णय और प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग करेंगे । ब्लैकली व ओटमैन ने इन्हें प्रशासनिक न्यायालय नाम देते हुए यह कहा है कि ये सामान्य न्यायिक प्रणाली से बाहर स्थित ऐसी सत्ता है जो उन कानूनों की व्याख्या करती है और उन्हें लागू करती है जब लोक प्रशासन के कार्यों पर औपचारिक मुकद्दमों या अन्य निर्धारित रीतियों द्वारा आक्रमण होता है।

भारत में 1950 के अनुसार न्यायाधिकरण के अंतर्गत वे सभी निकाय सम्मिलित हैं, जिनमें न्यायिक शक्तियां निहित हैं और जिनके दिए हुए निर्णय नागरिकों को प्रभावित करते हैं।

न्यायिक प्रक्रिया	**प्रशासनिक अधिनिर्णयन**
न्यायधीश अपने न्यायिक कार्यों का प्रत्यायोजन नही कर सकता है।	प्रशासनिक अधिकारी प्रायः अपनी निर्णय शक्ति का प्रत्यायोजन कर देते हैं।
न्यायिक प्रक्रिया में वाद या मुकद्दमें में दो पक्ष होते है। एक पक्ष न्यायालय जाता है, तो दूसरा विरोध में तर्क देता है।	प्रशासनिक अधिनिर्णय में दो पक्षों का झगड़ा भी हो सकता है। अथवा न्यायकर्ता अधिकारी स्वयं जांच पड़ताल या नियंत्रण का कार्य भी कर सकता है।
न्यायिक प्रक्रिया बहुत ही कठिन है व परप्परागत नियमों पर आधारित होती है।	प्रशासनिक अधिनिर्णयन के नियम प्रायः शिथिल तथा लचीले होते हैं।
न्यायपालिका तभी कार्यवाही शुरू करती है जब कोई न्याय मांगने आए।	प्रशासनिक अधिनिर्णयन में वादी तथा न्यायधीश दोनों क ही अभिकरण में समाहित हो जाते हैं।
यह न्यायपालिका द्वारा किया जाने वाला न्याय या अपनायी जाने वाली प्रक्रिया है।	यह कार्यपालिका द्वारा किये जाने वाला अर्द्ध न्यायिक प्रकृति का कार्य या प्रक्रिया है।
न्यायधीश प्रायः निष्पक्ष तटस्थ तथा विरोध रहित दृष्टि से युक्त माने जाते है।	प्रशासनिक अधिकारी प्रायः लोक नीति या कार्यपालिका के प्रति प्रतिबद्ध व किसी पक्ष या विरोध से युक्त होते है।
यह पूर्ण न्यायिक प्रकृति है।	यह अर्द्धन्यायिक प्रकृति का कार्य है।
न्यायिक प्रक्रिया सामान्य कानून तथा सामान्य मामलों से संबंधित होती है।	प्रशासनिक अधिनिर्णयन सरकार के किसी विशेष कार्य गतिविधि के संबंध में होता है।

प्रशासनिक न्यायाधिकरण लगभग सभी लोकतांत्रिक देशों में अपना स्थान बना चुके हैं। भारतीय संविधान की धारा 32, 136. 227 व 323(क) व (ख) के द्वारा प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को किसी न किसी रूप में स्वीकृती दी गई है। भारत में 1976 में 42वें संविधान संशोधन के द्वारा स्थापित अनुच्छेद 323(क) में यह प्रावधान किया है कि संसद विधि द्वारा संघ एवं राज्य सरकार के लोक सेवकों की सेवा की शर्तों से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए प्रशासनिक

न्यायाधिकरण की स्थापना कर सकती है। अनुच्छेद 323 (ख) के द्वारा यह प्रावधान रखा गया है कि विधानमण्डल निम्न विषयों संबंधित विवादों के निराकरण के लिए न्यायाधिकरण की स्थापना कर सकते हैं

(1) भूमि सुधार विधियां (2) नगर संपत्ति अधिकतम सीमा (3) कर संबंधित विवाद (4) औद्योगिक व श्रम विवाद (5) विदेशी मुद्रा और आयात–निर्यात (6) संसद व राज्य विधान मण्डल के सदस्यों के निर्वाचन संबंधी विवाद (7) अन्य मामले।

प्रशासकीय अधिनिर्णयन के प्रकारः– इन्हें हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं

(1) एग्लो सैक्सन प्रतिमान – इसको ब्रिटिश मॉडल भी कह सकते हैं। इंग्लैण्ड में नॉरमन साम्राज्य से पूर्व पांचवीं सदी से जर्मनी आदिवासियों द्वारा प्रसारित की गई भाषा ही अंग्रेजी का आधार बनी थी। एग्लो सैक्सन आदिवासियों ने ही इंग्लैण्ड नाम रखा था। प्राचीन इंग्लैण्ड को ही 'एग्लो सैक्सन' कहा जाता है। इस मॉडल की यह विशेषताएं हैं–

1. अपील के लिए कोई निशचित पदसोपान नहीं होता है।
2. अपील सामान्य न्यायालय में होती है।
3. इसमें प्रशासनिक न्यायाधिकरण किसी निशचित प्रणाली से गठित नहीं किए जाते हैं।
4. प्रशासकीय व न्यायिक कार्य प्रायः एक ही अभिकरण में समाहित रहते हैं।
5. इसमें न्याय प्रक्रिया की प्रणाली का अभाव होता है।
6. प्रशासनिक न्याय का कार्य सरकार के विभाग ही पूरा करते हैं।

(2) महाद्वीपीय प्रतिमान– विश्व में महाद्वीप तो कई हैं किंतु कॉन्टीनेंटल शब्द प्रायः यूरोप के लिए प्रयुक्त होता है। अतः महाद्वीपीय प्रतिमान को हम यूरोपीय प्रतिमान भी कह सकते हैं। सामान्यतः इन देशों में कानून तथा प्रशासनिक कानून अलग–अलग होते हैं जिनकी कुछ मुख्य विशेषताएं निम्न होती हैं–

1. अपील के संबंध में एक सुनिर्धारित पदसोपान होता है।
2. न्यायाधिकरण एक सुनिर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण है।
3. इस प्रतिमान में प्रशासनिक न्यायाधिकरण एक निशचित प्रणाली से गठित होते हैं।
4. यह सामान्य न्यायालयों के नियंत्रण से मुक्त होते हैं।
5. इसमें प्रशिक्षित व योग्य न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों से लाभ

1. प्रशासकीय न्यायाधिकरण सामान्य न्यायालयों की बजाय जल्दी कार्य करते है क्योंकि जिस प्रक्रिया का वे अनुगमन करते है वह कम जटिल होती है।
2. प्रशासकीय न्याय अधिक सस्ता है। बहुत से प्रशासकीय मामलों में वकील नहीं किए जाते और न फीस देनी पड़ती है।
3. प्रशासकीय न्यायाधिकरण अपने कार्य अधिक नमनीयता स पुरे करते हैं व पिछले निर्णयों या अन्य प्राधिकारियों से बंधे नहीं होते हैं। केवल विधि के शासन की धारणा ही बाधक होती है।

4. प्रशासकीय अधिनिर्णयन का अन्य लाभ इसकी संक्षिप्त प्रक्रिया है। यह प्रतिक्रिया संबंधी युद्ध की शिकार नहीं है जो अदालतों में सर्वत्र दिखाई देती है।

5. कभी–कभी आपातकालीन अधिकार प्रशासकीय प्राधिकारी को किसी अधिसूचना या कार्यपालिका आदेश द्वारा दिये जा सकते हैं या उसके द्वारा वापस भी लिये जा सकते हैं।

6. न्यायाधिकरणों के समक्ष बहुधा संविधि द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर मुख्य समस्या होती है। ऐसे मामलों को सामान्य न्यायालयों की अपेक्षा किसी न्यायाधिकरण द्वारा अधिक अच्छी तरह से निपटाया जा सकता है।

7. प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग करना संभव है। जबकि न्यायिक मुकदमों में ऐसे प्रयोग के लिए गुजाइश नहीं है। किसी सत्ता के कार्यों से प्राप्त व्यावहारिक अनुभव का नियमों, विनियमों तथा विधियों के सशोधन द्वारा अधिक सरलता से उपयोग किया जा सकता है

एफ ब्लेक्ली व मिरियम ई ओटनन के अनुसार प्रशासकीय न्यायालय साधारण न्यायालयों को कार्य संबंधी एक बड़े बोझ से केवल मुक्ति ही नहीं दिलाता है बल्कि ऐसे कार्य भी करता है जो सामान्य न्यायालयों के लिए बिल्कुल नये होते हैं। इनमे से एक कार्य है– विधि के अनुसार मामलों का निर्णय ऐसे विशेष प्रकार के मूल्यों के माध्यन से देना जिसमें लोकहित पर अधिक बल दिया गया है। महाद्वीपीय प्रणाली में अवध प्रशासकीय कार्यों तथा आदेशो को रद्द किए जाने की संभावना है। अत इसकी बार–बार समीक्षा करने की जरूरत नहीं पड़ती है। लेकिन महाद्वीपीय देशों में सामान्य न्यायालय प्रशासन पर वैसा नियंत्रण रखने में असमर्थ होते हैं जैसा संयुक्त राज्य व लण्ड में संभव होता है। फिर भी वैध प्रशासकीय कार्यवाही की अनिवार्य व्यवस्था है और किसी उपयुक्त न्यायाधिकरण के समक्ष मामला दायर करके व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा की जाती है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों से हानियां

के.एम. मुंशी के अनुसार 'प्रशासकीय विधि के विद्यार्थी होने के नाते हमे यह मानना न्यायाधिकरण तथा प्रशासकीय प्रक्रियाए आधुनिक भारत के लिए आवश्यक माधनिर्णयन की प्रशासकीय रीतियों को सामान्य विधि न्यायालयों के विकल्प के रूप में स्वीकार कर लिया गया तो प्रजातंत्र के ढांचे की जर्ड ही कर प्रशासकीय अधिनिर्णय की व्यवस्था दोष रहित नहीं है। आलोचना के मुख्य न प्रकार से हैं–

1. प्रशासकीय अधिनिर्णय की व्यवस्था प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी करती है। इसके अनुसार कोई भी मनुष्य अपने ही मामले में निर्णायक नहीं है चाहिए। किसी भी पक्ष को बिना सुने दंड नहीं देना चाहिए। प्रत्येक का निर्णय के कारण जानने का अधिकार होना चाहिए।

2. प्रचार का पूरा अभाव रहता है। प्रचार के बिना भावी निर्णय की प्रवत्ति के संबंध में पहले से बताना असंभव होता है। उन्हें गोपनीय रखा जाता है जो आवश्यक भी होता है। न्यायिक कार्य संपन्न करने वाले प्रशासकीय अभिकरण को अपने निष्कर्षों के समर्थन में तर्क देते हए नियमित अंतरालों पर अपने निर्णयों की रिपोर्ट प्रकाशित करना आवश्यक होता है।

3. प्रशासकीय न्यायाधिकरण एक सी प्रक्रियाओं का पालन नहीं करते फलस्वरूप निरंकुश तथा असंगत निर्णयों के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। लॉड हर्बर्ट ने संक्षेप में बताया कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए अपितु स्पष्ट रूप से यह प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है। संयुक्त राज्य ही एकमात्र देश है जिसने प्रशासकीय प्रक्रिया अधीनियम 1946 के अंदर नियम व प्रक्रिया संबंधी आवश्यकताओं को निर्धारित किया है।

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों को प्रभावी बनाने के लिए उपाय

यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की बहत सी कमियां व दोष हैं. किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आज की व्यवस्था की तरह प्रशासनिक न्यायाधिकरण भी आधुनिक जटिल समाज की आवश्यकता बन चुकी है। इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने चाहिए। इसके संबंध में निम्न सझाव दिये गये हैं–

1. सामान्य प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के अध्यक्ष एवं सदस्यों के पद लम्बे समय तक खाली नहीं रहना चाहिए।
2. प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की कार्यप्रणाली को सुनिशचित करने वाली व्यापक नियमावली तथा संहिता का अभी तक निर्माण नहीं हुआ है। इस दिशा में तत्काल सार्थक प्रयास किए जाने आवश्यक हैं।
3. यह माना जाता है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की न्यायालय की अवमानना के आदेश देने का अधिकार नहीं है। लेकिन भारत में सर्वोच्च न्यायालय की एक खण्डपीठ ने दिसम्बर 2000 में दिए गये निर्णय में यह स्पष्ट कर दिया कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण भी कानून की गरिमा बनाए रखने का कार्य करते है। अतः उन्हें भी किसी व्यक्ति को न्यायालय की अवमानना संबंधी सजा देने का अधिकार है।
4. प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का कार्य क्षेत्र अर्द्ध न्यायिक प्रकृति का है। कई बार यह प्रश्न उठ जाता है कि अमुक कार्य प्रशासनिक प्रकृति का है या नहीं। इस प्रकार के विवादों के निवारण के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक कार्य का विभाजन व वर्गीकरण सुस्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।

5. अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. उत्तरदायित्व एवं जिम्मेवारी से आप क्या समझते हैं।
2. प्रशासन पर कार्यपालिका के नियंत्रण के किन्हीं दो साधनों को समझाइए।
3. अध्यक्षात्मक प्रणाली में विद्यायी नियंत्रण के दो साधन लिखे।
4. प्रत्यायोजित विधान का अर्थ समझाइए।
5. प्रशासकिय अधिनिर्णयन का अर्थ व परिभाषा समझाइए।
6. प्रशासनिक अधिनिर्णयन कितने प्रकार के होते है? समझाइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासन पर कार्यपालिका नियंत्रण का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. संसदीय तथा अध्यक्षात्मक प्रणाली में विधायिका किस प्रकार नियंत्रण रखती है, विस्तार से समझाइए।
3. प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के साधनों तथा सीमाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. प्रत्यायोजित विधान के लाभ, हानि व इसके बचाव के तरीकों को विस्तार से समझाइए।
5. प्रशासनिक अधिनिर्णयन के अर्थ, उद्देश्य तथा प्रकारों को विस्तार से समझाइए।